ओम

Nyaya Bodhini

a treatise on

न्यायबोधिनी ॥

जी॰ डब्लू॰ लाइट्नर साहब बहादुर

Sanscrit Logic की *in Hindi*

आज्ञानुसार

प्राच्य महाविद्यालय के छात्रों को हिंदी भाषा के द्वारा न्यायशास्त्र के पदार्थों का बोध कराने के अर्थ उक्त महाविद्यालय में ॥

न्यायशास्त्र के

अध्यापक

पंडित सुखदयालु शास्त्री

for

की

बनाई हुई

श्री बाबू नवीनचंद्र राय महाशय

Punjab University College

की

अनुमति

से

अंजमन पञ्जाब नामी यंत्रालय में छपी

दिन हुई

सन् १८८२ ई॰ मई॰ २०

पहिली बार॰ ५००

ओम्

भूमिका

संसार में सब लोग सुख की प्राप्ति वा दुःख की हानि
को चाहते हैं, और उन में भी ज्ञानवान् लोग सुख को
नित्य जानके छोड़ देते हैं; क्योंकि सब अनित्य वस्तु
नाश शील हैं, तो नाश से पीछे वह सुख स्मरण के द्वारा
बड़ा दुःख देता है, जैसे राज्य भ्रष्ट पुरुष को राज्य दुःख दे
यद्यपि दुःख तीसरे क्षण में अपने स्वभाव से ही नष्ट होजा
ता है; तो भी दुःखान्तर सब उत्पन्न होते जाते हैं, इसी से स्व
र्गादि के लिये जो लोग यज्ञादि में प्रवृत्त हैं वे भी भ्रान्त हैं; क्यों
कि कोई राजा है, कोई प्रजा है, और कोई अप्सरा, गंधर्व हैं, कोई
ऋषीश्वर, देवता हैं। यह न्यूनाधिक भाव दुःख का हेतु वहां भी
बना ही रहता है। किन्तु संपूर्ण दुःखों का ऐसा नाश हो कि जिससे
पीछे कभी कोई एक दुःख भी न उत्पन्न हो। जिसे मुक्ति कहते हैं,
पंडित जनों को केवल वही अपेक्षित है। और जो ग्रंथ पंडितों को आ
नंद दे उसी का वर्णन करना उचित है। नहीं तो उन्मत्त प्रलाप समझ
के उसे कोई नहीं सुनेगा। इससे सिद्ध हुआ कि मोक्ष देने वाली रीति
यों का प्रतिपादन सबको अभीष्ट है परंतु नाश, वा होना, ना होना

उसी वस्तुका माना जाताहै जिस वस्तुको मनुष्य जानता है और मोक्षहै एक दुःखनाश इसलिये विना दुःख जानने के मोक्ष वस्तुका समझना असंभव है और मोक्ष पदार्थ जानने विना उसकी प्राप्तिके अर्थ उद्योग भी व्यर्थ है इसलिये दुःखोंके लक्षण और भेद, दुःखोंके कारण, दुःखनाश अर्थात् मोक्ष, दुःखनाशके कारण और वेदांत आदि छओं शास्त्रोंमें भक्तिकी मुख्यतासे न्याय शास्त्रको मुख्यताकी सिद्धि इत्यादि अनेक उत्तम पदार्थोंका जिसमें वर्णन है इस मेरी बालकों के अर्थ बनाई हुई भाषाकी न्यायबोधिनी को आद्योपांत देखेबिना पंडित लोगनिश्चयहै कि दोष नदेंगे और जो देखके यथार्थ दोष देंगे तो उनका मेरे पर पूरा उपकारहै क्योंकि मेरा ग्रंथ शुद्ध होजावेगा औरसर्वज्ञ तो ईश्वर है और सज्जनोंसे यहभीप्रार्थना है किभाषामें न्यायशास्त्र के पदार्थ नहीं लिखेजाते केवल इस हठको लेके इस ग्रंथमें घृणा नहीं करनी किन्तु आद्योपांत इसके अर्थकी संगति मिलानी फेर निश्चय है कि ईश्वर आपकी इच्छापूर्ण करेंगे श्रीयुक्त डाक्टर लाइट्नर साहिब बहादर की अनुमति से महाविद्यालय का उपयोगी यह ग्रंथ प्रारम्भकिया ॥ ॥

ॐश्रीगणेशायनमः ॥

विघ्नहरनगजवदनचरणयुगरिद्धिसदनकीपूजाकर स्वेत
वसनशिलग्रंथयरनसितहंसगमनशारदाध्याकर अज्ञानविदा
रनदुःखसंहारनश्रीगुरुपदमेंचितलाकर तर्कोदधिसेतु बालसु
खहेतुन्यायबोधिनीरचीया.कर ॥ १ ॥

लावनी ॥ दोहा

सुखदयालुनेग्रंथयहरच्योयथामतिदेख
महाविद्यालयकेलियेस्वामीसंमतिपेख २

मोक्ष, मोक्षके कारण, और मोक्षके प्रतिबंधको कोजानने वास्ते सारे संसार गत पदार्थोंका जानना अभीष्टहै; परन्तु केवल वाच्यत्व वा ज्ञेयत्व आदि साधारणसंज्ञासे पदार्थ ज्ञान जोहै वह मोक्ष क्याहै वा मोक्षका कारण क्याहै इत्यादि विशेष ज्ञान नहीं है किन्तु वह ज्ञान सब पदार्थों में यही जनावेगा कि "यहभी वाच्यहै" तो मोक्ष और व्यवहारकी अनुपपत्ति होगी इसलिये विशेष ज्ञानके वास्ते सारे जगत् को सातसंज्ञाओंसे विभक्त करते हैं। जैसे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, और अभाव, इनसातोंकोपदार्थ भी कहतेहैं इन सातोंमे द्रव्य नौ संज्ञाओं से विभक्त है जैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश काल, दिक्, आत्मा, और मन। गुण चौबीस संज्ञाओंमें विभक्त है जैसे रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख इच्छा, द्वेष, यत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द। कर्म पांच प्रकारका है जैसे उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुंचन, प्रसा-

रण, और गमन। सामान्य दो संज्ञाओंमे विभक्त है जैसे पर और अपर। विशेष अनन्त संज्ञाओंसे विभक्त है; परन्तु वे संज्ञा कौन सी हैं यह विचार पदार्थोंके दूसरे संस्कार में भलीभांति खुलेगा; क्योंकि इस प्रथम संस्कारमें बालकों की रुचिके वास्ते सातों पदार्थोंके भेदही लिखेहैं। उन भेदोंकी सिद्धि उपपत्ति और लक्षण अगले संस्कार में खुलेंगे। समवाय की एकही संज्ञाहै, अभाव दो संज्ञाओंसे विभक्त है जैसे संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव जिसे भेद भी कहतेहैं;। संसर्गाभाव, तीन संज्ञाओंसे विभक्त है जैसे प्रागभाव, ध्वंस और अत्यंताभाव॥ इतिप्रथमः संस्कारः॥

यद्यपि मनुष्य जगत् के पदार्थोंका प्रत्यक्ष से ही निश्चय करसकताहै; तो भी बहुत पदार्थ परमाणु आदि ऐसे हैं जो युक्ति सिद्ध हैं मानने तो अवश्य पड़ते हैं; परन्तु प्रत्यक्ष उनका नहीं होता और जानना संपूर्ण पदार्थोंका अभीष्ट है; इसलिये सब पदार्थोंके मिले हुए और भिन्न २ ऐसे २। धर्म जानने चाहिये कि" जो धर्म जिस वस्तु का हो वह उस सारी वस्तुमें रहे कोई स्थान रीता न छोड़े; और उस वस्तु से भिन्न वस्तुमें कहीं न रहे ऐसे धर्मका नाम लक्षण है। जिसका लक्षण करनी अभीष्ट है उसे लक्ष्य कहतेहैं। उससे भिन्न पदार्थों को अलक्ष्य कहतेहैं। वही लक्षण सम्यक् होताहै जो अव्याप्ति अतिव्याप्तिऔर असंभव इनतीन दोषसे रहित हो; परंतु सातों पदार्थोंका मिलाहुआ लक्षण जाननेसे पहिले द्रव्य आदि पदार्थों का लक्षण कभी नहिं होसकता; इसलिये पहिले सातों पदार्थोंका मिलाहुआ लक्षण जानना चाहिये; जैसा ज्ञेयत्व अर्थात् जानने की योग्यता, इस धर्मसे संपूर्ण पदार्थोंका ज्ञान होसकताहै; क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञहै इसलिये जानने के योग्य सारे पदार्थ हुए। बहुत

लोग यह भी आशंका करते हैं कि शक्ति और सादृश्य नामी पदार्थ तुम्हारे द्रव्य आदि सात पदार्थोंमें नहीं आये और मानने अवश्य पड़ते हैं; इससे सातही पदार्थ हैं; । यह कथन असंगत है । शक्ति इसलिये मानते हैं कि दाहका कारण वह्नि मानें तो नहीं मान सकते; क्योंकि वह्निपड़भी हो पर किसी मंत्रसे अथवा मणिसे वा औषध से बांधने से वही वह्नि दाह नहीं करता और उन मणि मंत्र औषध को हटा लेवें; अथवा साथ उत्तेजक मणि भी रखदें तो वही वह्नि दाह को करता है इससे प्रतीत होता है कि दाहकी कारण अग्निमें शक्ति है; जो मणि मंत्र औषध से नष्ट होजातीहै और मणि-आदिके हटालेने से अथवा उत्तेजकमणिके साहाय्य से वह्निमें दाहकी कारण शक्ति उत्पन्न होतीहै इससे शक्ति अवश्य माननी चाहिये । पर सातपदार्थों में तो कहीं शक्ति नहीं आई । इसी भांति सादृश्य भी अतिरिक्त पदार्थ अवश्य मानना चाहिये और यह सादृश्य सात पदार्थों में से एकमें भी नहीं आसकता; क्योंकि द्रव्य आदि छे भावोंमें तो इसलिये नहीं आता; कि जिससे "सामान्य" जातिमें रहताहै जैसा कि गोत्वके सदृश नित्यहै अश्वत्व अर्थात् नित्यत्व धर्मसे गोत्वजातिका सादृश्य अश्वत्व जातिमें रहा; परन्तु सामान्य (जाति) में भाव कोई नहीं रहता और सादृश्यजाति में रहा इससे सादृश्य भाव नहींहै। और सादृश्य अभाव भी नहीं क्योंकि यह ध्वंस और प्रागभाव से भिन्न है नञ्से इसका बोध नहीं होता जिस पदार्थ का नञ्से बोध नहीं हो; और जो ध्वंस प्रागभाव इन दोनोंसे भिन्न हो वह अभाव नहीं होता; क्योंकि भाव कालदास आगे यह ही लिखा है; परन्तु सादृश्य में भाव का भेद प्रथमही सिद्ध करचुके हैं अब अभाव सेभी भिन्न सादृश्य

सिद्ध हुआ अर्थात् शक्तिकी नाईं सादृश्य भी सातों पदार्थों से
अतिरिक्त सिद्ध हुआ; इससे नौ पदार्थ कहने चाहिये, सातोंका
कथन असंगत प्रतीत होताहै । इसका उत्तर यूं देते हैं कि सम्पू-
र्ण पदार्थोंकी सामर्थ्यका नाम शक्ति है; परन्तु प्रत्येक पदार्थ की
सामर्थ्य भिन्न हैं; और विजातीय भी हैं क्यों किसी कार्यमें परमे-
श्वरकी सामर्थ्यही हेतु है; और किसीमें राजाकी सामर्थ्य किसी
में पंडितकी; किसीमें मूर्खकी; किसीमें निर्द्धन की सामर्थ्य भी
हेतु है; जैसा कि यह सारे सूर्य्य चंद्रमा आदिकी रचना करे; उन्हें
अपनी २ मर्य्यादापर चलाना; यह परमेश्वरकी ही सामर्थ्य है । प-
र उनमें जोगुण रहते हैं सर्व विषयक ज्ञान, इच्छा, यत्न, उनसे
भिन्न नहीं है किन्तु गुण पदार्थ ही है । और कई करोड़ों रुपये;
और हज़ारों नौकर, बड़ा विस्तृत राज्य आदि इनसे अतिरिक्त राजा
की सामर्थ्य ही है नहीं; परन्तु ये सबराज्य आदि द्रव्य पदार्थ में ही
आतेहैं । और शास्त्र विषयक ज्ञान स्फूर्ति नाम का यह पंडित की
सामर्थ्य भी गुण पदार्थ है । हिंसाआदिदुष्ट कर्मसे पृथक्; मूर्ख-
की सामर्थ्य नहीं है अर्थात् कर्म पदार्थ के ही अंतर्गत है और
भिक्षामांगनी, सेवा करनी भी; कर्म पदार्थ निर्द्धनकी सामर्थ्य हो-
तीहै । इसी भांति प्रकृत में उत्तेजका भाव विशिष्ट मणिका अभाव
ही वह्निमें दाह करने की सामर्थ्यहै अर्थात् वह्निमें दाहक शक्ति
अभाव पदार्थ है । इसी रीति सारे पदार्थों की भिन्न २ शक्तियें सातों
पदार्थों में ही आजावेंगी; इसलिये सातपदार्थों से पृथक् शक्तिका
मानना सर्वथा अनुचित है । और सादृश्य भी एक नहीं होसकता;
क्योंकि कहीं चंद्रमा की उपमा मुखको दी जाती है, गौ की उपमा
गोसदृ (गवय) में दी जाती है और कहीं गधेकी उपमा छोटे घोड़े

को दी जातीहै। जिसकी उपमा देतेहैं उसे उपमान; और जिसमें उपमा दें उसे उपमेय कहते हैं। जैसा कि "चंद्रमाके तुल्य मुखहै" इस वाक्यमें चंद्रमाकी उपमा मुखमें देते हैं; इसलिये चंद्रमा उपमान और मुख उपमेय है और इन दोनों में रहने वाला; निर्मलत्व अर्थात् मलका अभाव और आनंद हेतुत्व अर्थात् आनंद देना इत्यादि साधारण धर्म अर्थात् उपमान उपमेय इन दोनोंमें रहने वाले धर्म उपमा कहाते हैं; परन्तु ये धर्म द्रव्य आदि सातों पदार्थो से अतिरिक्त नहीं; किन्तु इन्हीं के बीचमें हैं; इससे सादृश्य भी पृथक् पदार्थ नहीं है; किन्तु सातही पदार्थ हैं। द्रव्यआदि छः पदार्थोका लक्षण भावत्व, अर्थात् जिसका नहिं, शब्द से ज्ञान न हो और ध्वंस वा प्रागभाव भी न हो; उस व स्तु को भाव कहते हैं जैसा कि द्रव्य आदि छओं पदार्थो मे कोई ऐसा नहीं है; जिसे नहीं शब्द से समुझें, क्योंकि यहां देवद त्त नहीं है; इसवाक्य में नहीं, शब्दसे अभावका बोध होता है इ सलिये देवदत्तका; नहीं शब्दसे ज्ञान नहीं हुआ और देवदत्तका प्रागभाव वा ध्वंस होसकताहै; इसलिये देवदत्त ध्वंस और प्राग भाव से भी भिन्न हुआ तो भाव है। इसी भांति द्रव्यआदि छओं में जिस किसीको देवदत्त के स्थानमें लगानेसे लक्षण घट जावे गा; और अभाव कोई भी ऐसा नहीं है; क्योंकि ध्वंस तो ध्वंससे भिन्न नहीं, और प्रागभाव प्रागभाव से भिन्न नहीं है; और अत्यं ताभाव का नहिं; शब्द से ज्ञान होता है; जैसा यहां घट नहींहै इ स वाक्यमें नहीं शब्दका अर्थ अत्यंताभाव है अर्थात् यहां घटका अत्यंताभाव है; । और अन्योन्याभाव भी नहीं शब्दसे जानाजाता है जैसा कि यह घट नहिं है किन्तु घटसे भिन्नहै इस वाक्यमें

नहीं का अर्थ भेद है जिसे अन्योन्या भाव भी कहते हैं; इन सब उपपत्तिओंसे सिद्ध हुआ कि भावत्व द्रव्यआदि छे पदार्थों में सारे रहा; और अभावों में कहीं नहीं रहा; इसलिये द्रव्यआदि छे पदार्थों का दूसरा लक्षण भावत्व हुआ अर्थात् द्रव्य आदि छे पदार्थ भाव हैं। और द्रव्य आदि पांचका लक्षण भावत्वे सत्यनेकत्व है अर्थात् जो भाव हो; और अनेकभी हो; उसे द्रव्यआदि पांचो-मेंही समुझना चाहिये; जैसाकि द्रव्यभाव है पिछली उपपत्ति से, और नौप्रकारका है इसलिये अनेकभी है और समवाय यद्यपिभाव है; परन्तु अनेक नहीं; क्योंकि पीछे लिखचुके हैं समवाय एकहीहै। और अभाव यद्यपि अनेक है; परन्तु भाव नहीं है ऊपर सिद्ध हुआहै किभाव छेही हैं। इसलिये सिद्ध हुआ कि द्रव्यआदि पांचपदार्थ अनेक हैं औरभावभी हैं। और द्रव्यआदि चारपदार्थोंका लक्षण समवेत समवेतत्वहै अर्थात् समवाय संबंधसे जोरहे उसमें समवाय संबंधसे रहतेहैं द्रव्य-आदि चारों; जैसाकि समवाय सम्बन्धसे कपाल कपालिकामें रहताहै; और कपालमें घटसमवाय संबन्धसे रहताहै, । विशेष समवाय संबंधसे चाहे परमाणुआदि नित्यद्रव्योंमे रहताहै, परन्तु नित्यद्रव्य समवाय संबंध से कहीं नहिं रहते हैं। और समवाय का अभाव जहां रहेगा स्वरूप संबंधसे न समवाय से; यह बात समवाय निरूपणमें भलीभांति प्रगट होगी; इसलिये सिद्ध हुआ कि द्रव्य, गुण, कर्म और सामान्य ये चारों समवेत समवेत हैं। द्रव्य, गुण और कर्म इन तीनों का लक्षण सत्तावत्वहै अर्थात् जाति धर्म इन्हीं तीनों में रहताहै; यथा घटमें घटत्वजातिहै अर्थात् कंबुग्रीवा आदि अंगों वाली व्यक्तिमें घट

याह रूढ़ है; क्योंकि यात का अर्थ छोड़के उस व्यक्तिको जना-
ताहै। और सामान्य आदि चारों में सत्ता क्यों नहीं रहती यह विचार
सामान्य निरूपणमें भलीभांति खुलेगा, तो इससे सिद्ध हुआ कि
जाति वा सत्ता द्रव्यआदि तीनोंमेंही रहतीहै। और द्रव्य, गुण, क-
र्म इन तीनों का लक्षण कर्मावृत्ति जाति मत्वहै, अर्थात् कर्ममें जो जाति
नरहै वह द्रव्यमें वा गुण में ही रहेगी। गुणआदि छत्रोंका लक्ष-
ण निर्गुणत्व वा निष्क्रियत्व अर्थात् इन छओंमें रूपआदि चौ-
बीस गुणोंमेंसे; और उत्क्षेपण आदि पांचों कर्मों में से कोई नहीं
रहता, यह बात गुण निरूपणमें खुलेगी। कारणका लक्षण अ-
न्यथा सिद्धि शून्यत्व है, अर्थात् उत्पत्ति से एक क्षण पहिले जिस
वस्तुके आने विना कहीं भी जो कार्य न उत्पन्न हो उस कार्यका
वह वस्तु कारण होताहै, जैसाकि लेखिनी पत्रमसीके विना लिख-
ना नहीं बनता, इसलिये लेखिनीआदि सब लिखने के कारण
हैं। और अणु, दीर्घ, महत्, ह्रस्व, येचार भांतिके परिमाण
अपने २ सजातीय उत्कृष्ट परिमाणों को ही उत्पन्न करते हैं,
जैसे कपाल का महत् परिमाण अपनी अपेक्षा उत्कृष्ट घटके
परिमाण का कारण है; इस नियमसे परमाणु और द्व्यणुकका
अणुपरिमाण; और आकाश काल आदिकों का परम महत् प-
रिमाण किसीका कारण नहींहै क्योंकि परमाणुका परिमाण
द्व्यणुकके परिमाणका कारण नहीं होसकता, । जिससे द्व्यणुक
का परिमाण परमाणु के परिमाण से उत्कृष्ट नहीं है; क्योंकि
अणुकी उत्कृष्टता अधिक अणुहोना अर्थात् बहुत छोटा हो-
नाही उत्कृष्टता (छोटेकी) है; जैसा कि देवताओंमें बड़ा कौनहै
जिसमें दया बहुतहो। और राक्षसोंमें बड़ा कौन है, जो निर्दय

अर्थात् जिसमें दया बहुत थोडी हो, वह बड़ा राक्षस हैं। द्व्यणुकका परिमाण भी त्र्यणुक के परिमाण का, कारण नहीं होसकता; क्योंकि ये दोनों सजातीय नहीं हैं; द्व्यणुकका परिमाण अणु है; और त्र्यणुकका परिमाण महत् है, । क्योंकि जिस द्रव्यके समवायि कारण अनेक अवयवी हों, वह द्रव्यमहान् होताहै, । इसनियमसे, । त्र्यणुकका महत् परिमाण है; क्योंकि त्र्यणुकके समवायि कारण तीन द्व्यणुक हैं, । वे तीनों ही अवयवी (अवयवोंवाले) हैं। और द्व्यणुकके अवयव यद्यपि दो परमाणु हैं, । परन्तु वे अवयवी नहीं हैं, अर्थात् उनका अवयव कोई नहीं है, । इसलिये द्व्यणुक का परिमाण महत् नहीं, किन्तु अणु है। और त्र्यणुक से लेकर घट आदि अंतिम पदार्थों तक, सबके समवायि कारण, अनेक अवयवी होतेहैं, इसलिये इन सब का महत् परिमाणहै, केवल परमाणु और द्व्यणुक का अणु परिमाण है, । इन युक्तिओंसे सिद्ध हुआ, कि अणु परिमाण किसीका भी कारण नहींहै । किन्तु परमाणु ओंकी द्वित्व संख्या द्व्यणुक के परिमाण की और द्व्यणुककी त्रित्व संख्या त्र्यणुक के परिमाणकी असमवायिकारण है, । इसीसे द्व्यणुक और त्र्यणुकका परिमाण संख्याजन्य परिमाणकहाताहै । और परम महत्परिमाण से उत्कृष्ट (बड़ा) परिमाणहोहि नहीं सकता, । इसलिये वह भी किसीका कारण नहीं होता, इसमें ऐसीभी आशंका होतीहै; कि प्रत्यक्ष में महत्व कारण है; तो आत्माके मानस प्रत्यक्षमें आत्माका परम महत्परिमाण कारण होगया । और प्रत्यक्षमें विषय कारण होताहै, तो योगी जनोंको जो परमाणुके परिमाण

का और आकाशके परिमाण का प्रत्यक्ष अलौकिक होताहै, उसमें अणु परिमाण और परम महत्परिमाण भी कारण हो गया। फिर कैसे कहते हो, कि अणु परिमाण और परम महत् परिमाण किसीका कारण नहीं है। इसका उत्तर यूं करते हैं, कि परम महत् परिमाण ज्ञानसे बिना किसीका कारण नहीं है। जो आत्माका परम महत् परिमाण आत्माके मानसप्रत्यक्षका कारणहै, भी परन्तु प्रत्यक्ष नामी ज्ञानका कारण बन्ह हो, ज्ञानसे भिन्न किसीका कारण नहीं है। और जो वस्तु सो वर्षसे पीछे उत्पन्न होगी, अथवा जिस वस्तुका नाश सौ वर्ष पहिले हो चुकाहै; उन सभी वस्तुओंका प्रत्यक्ष, योगिओंको वर्तमान समयमें होताहै; इससे सिद्ध होताहै, योगिओंके अलौकिक प्रत्यक्षमें विषय नहीं कारण होता। इसीभांति अतींद्रिय (जिसका प्रत्यक्ष कभी नहो,) सामान्य (जाति), और विशेष येभी किसीके कारण नहीं होते। यहां यदि कोई ऐसा कहै, कि अलौकिक प्रत्यक्षमें सामान्य लक्षण कारणहै, और जानी हुई जातिको सामान्य लक्षण कहतेहैं, तो यह मन अणु है, इसी (मनस्त्वजातिके) संबंधसे सारे मन अणुहैं, इस सारे मनोंके अलौकिक प्रत्यक्षमें अतींद्रिय मनस्त्व जाति कारण है। फिर कैसे कहते हो, कि अतींद्रियजाति किसीकी कारण नहीं है। और प्राचीन लोग अनुमिति में जाना हुआ, हेतु कारण मानतेहैं, उनके मतसे "यह परमाणु उस परमाणुसे भिन्नहै, इस विशेषसे" इस अनुमितिका कारण विशेष होगया, फिर कैसे कहतेहो, कि विशेष किसीका कारण नहीं है। इसका उत्तर यूंदेना, कि सिद्धान्तमें आगे अलौकिक प्र-

त्यक्ष के निरूपणमें सिद्ध करेंगे कि जातिका ज्ञान सामान्य लक्षण है। जाति सामान्य लक्षण नहीं है। जो मनस्त्वका ज्ञान अर्नोके अलौकिक प्रत्यक्षका कारण हो,भी परन्तु मनस्त्व किसीका कारण नहीं, अर्थात् अतीन्द्रिय जाति किसीकी कारण नहीं है। और अनुमान के निरूपण में यहभी सिद्ध करेंगे कि सिद्धान्त में अनुमितिका कारण व्याप्ति ज्ञान है। हेतु अनुमितिका कारण नहीं है, तो सिद्ध होगया, कि अतीन्द्रिय जाति, और विशेष पदार्थ भी किसीका कारण नहीं है॥ कारण तीन प्रकारकाहै, जैसाकि समवायी कारण, असमवायी कारण और निमित्तकारण। जो कार्य समवाय संबंधसे जिस पदार्थ में रहे। वह पदार्थ उसकार्यका समवायीकारण होता है। जिसे उपादान कारण भी कहते हैं। जैसे वृक्षसमवाय संबंधसे अपनी शाखाओंमें रहताहै। इससे सारी शाखा वृक्षकी समवायी कारण हैं। और कौन पदार्थ समवाय संबंधसे कहां रहताहै, यह बात समवायके निरूपण में भलीभांति स्पष्ट होगी। और असमवायी कारणका लक्षण समवायी कारण वृत्तिकारणत्व है। अर्थात् जिस कार्यके समवायी कारण मे जोकारण रहे, वह उसकार्यका असमवायी कारण होता है; जैसे वृक्षकी समवायी कारण सब शाखा हैं। उनका संयोग अर्थात् मिलाप उन्हीं में रहताहै, और वह मिलाप वृक्षका कारण भीहै, क्योंकि मिलापसे विना भिन्न २ शाखाओंके वृक्ष कोई नहीं कहताहै; इससे सिद्ध हुआ, कि शाखाओंके मिलाप (संयोग) वृक्षके असमवायी कारण हैं। और निमित्त कारण का लक्षण समवायि कारण भिन्नत्वेसति असमवायि का-

रगा भिन्नत्व है, । अर्थात् जो जिसकार्यका समवायी कारण भी नहो, । और असमवायी कारण भी नहो, । परन्तु कारण हो, तो वह उसवस्तुका निमित्त कारण होताहै । जैसे बीजका बोना और पानीका सींचना आदि वृक्षके समवायी कारण भी नहीं है; क्योंकि बोने वा सिंचनेमे वृक्ष समवाय संबंधसे नहीं रहता, और ये सब असमवायी कारण भी नहीं हैं; क्योंकि बोना वा सींचना शाखाओंमे नहीं रहता; और कारण है, क्योंकि पृथ्वीमें बीज बोए विना वा पानी सिंचे विना कभी वृक्ष नहीं उपजता चाहे वायुसेही बीज उड़कर पृथ्वीमें आपड़े; चाहे मेघ सेही पानी सिंचाजावे; इससे सिद्ध हुआ, कि बीज का बोना, पानी और बोने वाला, आदि वृक्षके निमित्त कारण हैं । परन्तु इतना नियम है, कि (कोई कार्य हो) समवायी कारण द्रव्यही होताहै; जैसे घट मृत्तिकासे बनताहै, वह मृत्तिका द्रव्य है, जिसे पृथ्वीकहतेहैं, और घटसे विना रूप, रसआदि घटके गुणोंका, और उत्क्षेपण आदि घटकी क्रियाओंका होना, असंभव है; इससे सिद्ध हुआ, कि घटके गुणोंका और घटकी क्रियाओंका उपादान अर्थात् समवायी कारण घटहीहै; वह घट द्रव्यहै, सामान्य, विशेष और समवाय ये तीनों किसीके कार्य नहीं हैं, जिससे यह बात आगे इन्ही पदार्थों के निरूपण में सिद्ध होगी; कि ये तीनों नित्यहैं; और अभावका समवायी कारण कोई नहीं होता; क्योंकि अभाव समवाय संबंधसे कहीं नहीं रहता ।

और इसी भांति यह भी मानना; कि कोई कार्य हो, असमवायी कारण गुण वा कर्मही होगा; जैसे घटका असमवायी कारण दो कपालोंका मिलना है; वह मिलना संयोग नामी

गुण है; इसी भांति सब कार्यों मे समझलेना । और निमित्त कारण में कोई नियम नहीं है; क्योंकि सब पदार्थ निमित्त कारण होसकते हैं; जैसे प्रतिबंधक का अभाव अर्थात् नहोना सब कार्योंमे कारण है ॥ और गुणआदि छओ पदार्थ द्रव्यसे विना खपुष्प के तुल्य होजाते हैं; इसलिये पहिले विशेष करके द्रव्य का निरूपण करते है; और कई लोग नौ द्रव्यों के निरूपण में ऐसी आशंका करते हैं; कि (नीलंतमः चलति) अर्थात् वह बड़ा काला अंधेरा भागता है; इस प्रतीतिसे अंधेरे (तम) में नीलरूप और कर्म प्रत्यक्ष ही देखने में आताहै; इससे तमको अवश्य द्रव्य मानना चाहिये; परन्तु तम में गंध नहीं रहता; इससे तम पृथिवी नहीं है । और जलआदि आठ द्रव्यों में तम नहीं आसकता; क्योंकि इसमे नीलरूपहै; अर्थात् दसवां द्रव्य तम कहना चाहिये । और पृथ्वी आदि नौ द्रव्योंमे से जिनका चक्षु से प्रत्यक्ष होताहै; आलोकके सहाय्य सेही होताहै । विन आलोक के कभी प्रत्यक्ष नहीं होता; परन्तु तमका प्रत्यक्ष आलोकसे विनाही होताहै; इससे भी सिद्ध हुआ; कि इन नौ द्रव्यों से विजातीय तमनामी द्रव्य है; तो (नौही द्रव्य हैं) यह कथन सर्वथा असंगत प्रतीत होताहै । इसका उत्तर यूं देते हैं; कि तम द्रव्य नहीं किंतु अभाव (प्रौढ़ प्रकाशक तेजः सामान्या भाव) को तम कहते हैं; अर्थात् प्रकाश करने वाले स्थूल तेजका सामान्याभाव तमहै, जहां स्वर्णका बड़ा ढेला पड़ा हो, तो वह स्वर्ण स्थूल है, परन्तु प्रकाशक नहीं, इससे "यहां अंधेरा है" यह व्यवहार वहांहो जावेगा । और जहां वह्निके अणुक (छोटे चिंगारे) पड़े हों; अथवा जहां खद्योत (टगाणो) उड़ते हो; तोवे

चिंगाड़े वा खद्योत प्रकाशक हैं भी; परन्तु जिससे स्थूल नहीं, किन्तु सूक्ष्म हैं, । इसीसे "यहां बड़ा अंधेराहै" यह प्रतीति यथार्थ वहां होजावेगी । और दिनमें दीपके वा चंद्रमा के तेजका अभाव रहताभीहै; परन्तु वर्तमान सूर्य के तेजका अभाव नरहने से प्रकाश करने वाले स्थूल तेजका सामान्याभाव नहीं रहता; इससे यह व्यवहार नहीं होता, कि अब यहां अंधेराहै, किन्तु जहां प्रकाश करने वाला कोई एक स्थूलतेज भी नरहे; वहांही इस सामान्याभाव को तम अर्थात् अंधेरा कहते हैं । और आलोक (प्रकाश) के न होनेसे चक्षु की सामर्थ्य क्षीण होजानेसे अंधेरेमें नील रूपका भ्रमही होताहै; जैसा कि बहुत दूर होनेके दोषसे आकाशमें चक्षुकी सामर्थ्य क्षीण हो जाने सेही नील रूप का भ्रम होताहै, । और उल्लू आदि पक्षियों के चक्षु अपने स्वभावसेहि अधिक प्रकाशमें नहीं देख सकते; किन्तु प्रकाश जितना थोड़ा हो, उतना हीं अधिक प्रत्यक्ष उन्हें होताहै । इसीभांति दीप आदिके इधर उधर करनेसे प्रकाश (तेज) की क्रिया भ्रमसे अंधेरे में प्रतीत होती है; इन युक्तिओं से सिद्ध हुआ, कि तम द्रव्य नहीं, किन्तु अभावहै । यहभी आशंका यहां होतीहै; कि उक्त तेजके अभाव को तम कहते हो; यहां ऐसाही क्यों नहो, कि अंधेरेका अभाव तेजहै; और अंधेरा द्रव्यहै । इसका उत्तर यहहै, कि जो पुरुष तेजको अभाव माने; उसके हाथ पर जलता हुआ, अंगार रखने से दाह न मानना चाहिये, क्योंकि विनास्पर्शके दाह नहीं होता; परंतु तेज अभावहै, और अभावमें कोई एकभी गुण नहीं

रहता; तो स्पर्श नामी गुण अभाव में कैसे रहेगा; इससे तेज के द्रव्य और तम (अंधेरे) का अभाव मानना। कई लोग यह आशंका भी करते हैं; कि स्वर्ण नामी दसवां द्रव्य तो अवश्य मानना चाहिये; क्यों रूपआदि कई गुण प्रसद्ध सेही स्वर्ण में दीखते हैं; इससे स्वर्णके द्रव्य होनेमें तो संदेहही नहीं है। और गंधके नहोने से स्वर्ण पृथिवी भी नहीं है; और पीतरूपरहने से स्वर्ण जल आदि और द्रव्योंमें भी नहीं आसकता; इसलिये स्वर्ण नामी दसवां द्रव्य अवश्य मानना चाहिये। इसका उत्तर यह है कि विना किसी अन्य वस्तुके मिलाए, अधिकसे अधिक अग्निका संयोग होने पर भी जिस पदार्थका द्रवत्व नष्ट न होवे; उसे तेजही कहते हैं। और स्वर्णमें कोई औषधि मिलाए, विना चाहे कितनाही स्वर्णको आगमें फूकें, पर उसका द्रवत्व (फूलना) कभी नष्ट नहीं होता; परन्तु पृथिवी अथवा जलमें अधिक अग्निके संयोगसे द्रवत्व नष्ट होजाता है; इससे स्वर्ण पृथिवी और जलसे भिन्न तेज है। क्योंकि वायु आदि द्रव्यों में तो द्रवत्व रहता ही नहीं है; और जो ऐसा कहे, कि गुरुत्व तो पृथ्वी और जल इन दोनोंमेंही रहताहै; जैसा कि भाषा परिच्छेदमें भी लिखाहै, "गुरुणीद्वेरसवती" और स्वर्ण अनेक धातुओंसे भारा होताहै; फिर तेज किस भांति मानते हो। इसका उत्तर यह है कि स्वर्णतो उक्त युक्तिसे तेजही है; किन्तु पृथिवीका भाग जो उस में मिलाहै; पीतरूप और गुरुत्व उसी में रहते हैं; जैसाकि जलसे भरे हुए एक बड़े पात्रमें पीतवस्त्र पाकर, चाहे कितना अग्निसे काढ़े; तोभी उस वस्त्रको पाक नहीं होता, कि जिससे उसके रूपआदि गुण अन्यसे अन्य होते चले जावें;

इसलिये वह जल वहां पाकका प्रतिबंधक मानाहै। इसी भांति स्वर्णके बीच पीतरूप और गुरुत्व वाला पृथिवीका जो भागहै, उसे चाहे कितना फूंके, तोभी उसमें पाक नहीं होता। इससे पाकका प्रतिबंधक कोई द्रवीभूत (बहताहुआ) द्रव्य वहां अवश्य मानना चाहिये, जो उस पृथिवीके अंशको पकने वा सडनेनहीं देता; परन्तु स्वर्णको अग्निमें चाहे कितनाही फूंके तोभी उसका द्रवत्व नहीं नष्ट होता; इससे सिद्धहुआ कि स्वर्णमें (पीतरूप और गुरुत्व का आश्रय) जो पृथिवीका भाग है; उसके पाकका प्रतिबंधक जो द्रवीभूत द्रव्य है; वह तेज पदार्थ स्वर्ण नाम से प्रसिद्ध है। और उसके अंदर जो पृथिवीका अंशमिला हुआ है; उसमें द्रवत्व नहीं रहता, जैसा कि लिखनेके समय जलके द्रवत्वसेही मसी (स्याही) का चूर्ण भी बहता मालूम होताहै; अर्थात उसमें साक्षात् द्रवत्व नहीं है; इसी रीति फले हुए स्वर्णके द्रवत्वसेही उसके भीतर पृथिवी का अंशभी द्रवा हुआ, मालूम होता है; अर्थात उसपृथिवी के अंशमें साक्षात् द्रवत्व नहीं है; इन युक्तिओं से स्वर्णको तेजके अंदर लाकर सिद्ध कर दिया; कि नोही द्रव्य हैं ॥ द्रव्यका लक्षण गुणवत्व है; अर्थात रूपआदि चौबीस गुणोंमेंसे जिसमें एकभी रहे; उसे द्रव्य कहते हैं। यद्यपि संख्या आदि कई गुण सब पदार्थोंमें पाये जाते हैं; तो भी गुण आदि पदार्थों में संख्याकी कल्पना मात्र है, क्योंकि जैसे घट तो वही बना रहताहै; और पाकसे रूपरस आदि गुण उसके औरहोजाते हैं; ऐसे यदि कहीं रूप रस आदि गुण वेही रहें; और घट और होजावे, तो जाने कि रूप भी कोई जुदापिंड है। इससे सिद्ध हुआ, कि संख्याआदि सामान्य गुण भी मुख्यता से द्रव्यों-

मेंही रहतेहैं । गुणआदिकोंमें गौण व्यवहारसे कल्पनामात्रहै; औ रभीहै कियदि गुणोंमें गुण रहें; तो रूपका भी कोई रूप और र सका भी रस होना चाहिये; और जिसरीति द्रव्योंमें व्यवहार होता है; कि दस घट लेआओ, वा पांच घट लेजाओ; इसरीति गुणोंका व्यवहारकहीं नहीं होता; इन युक्तिओंसे सिद्धहुआ, कि सब गुण द्रव्यमेंहीरहतेहैं । नवों द्रव्योंमें से पृथिवीजिसे लोग मिट्टीभी कहतेहैं; इसमें चौदह गुण रहते हैं; जैसे रूपरस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, बिभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, और वेग, । लक्षणतो पृथिवीका गंधवत्व है; अर्थात् जिसमें को ई एक सुगंध वा दुर्गंध आवे, उसे पृथिवी (मिट्टी) कहते हैं; जैसा कि फूल, लकडी आदि पृथिवी हैं । यद्यपि पत्थरआदि मिट्टी में गंध नहीं मालूम पड़ता; तोभी सूक्ष्म गंध उसमें जानना चाहिये, नहीं तो पत्थरकी राख (चूने) में गंध कहांसे आताहै; क्योंकि ए क कपड़ा फाड़ाजाय, और उसके तंतु सब जुदे २ किये जावें, तो उन तंतुओंमें वेही रूप रस और गंधआदि दीखपड़ेंगे; जो पटमें थे, ऐसा कभी नहोगा, कि पटमें नीलरूप था, और तंतुओंका पीतरूप होजावे, वा पटमें दुर्गंधथा, और तंतुओंमें सुगंध होजा वे; इससे सिद्ध हुआ, कि पत्थरकी भस्म (चूने) में गंध आताहै, तो पत्थरमें अवश्य गंधहै; केवल सूक्ष्महोनेसे उसका प्रत्यक्ष न हीं होताहै । पृथिवी (मिट्टी) दो प्रकारकीहै, जैसे नित्य और अ नित्य, नित्य-उसे कहतेहैं, जो उत्पन्न भी नहो, और कभी नष्टभी नहो । अनित्यवहहै; जो उत्पन्नभीहो, और नष्टभी हो । और झरो खोंमें धूप आनेसे जो छोटे २ धूलीके कण मालूम देतेहैं; उन प्र त्येकका नाम त्रसरेणु है; त्रसरेणुकी तिहाई द्व्यणुक है; और

द्व्यणुकका आधा अर्थात् त्र्यणुकका छठाभाग परमाणु होता है।
इस परमाणुके खंड नहीं होते; यही परमाणु नामी पृथिवी नित्य
है; यदि इसकेभी खंडमानें, तो यहभी नित्य नहुई; क्योंकि खंड
होनेसे नष्ट होगई। जो प्रत्यक्ष देखते हैं, कि विना उपादान का-
रणके कभी कार्य नहीं उत्पन्न होताहै; जैसे विना मिट्टीके घट
कभी नहीं बनसकता, और तंतुओंसे विना पट कभी नहीं ब-
नता, और यह भी प्रत्यक्ष देखते हैं, कि उपादान कारण के रूप
रस आदि गुणही कार्यमें आतेहैं; जैसा नील तंतुसे नीलही पट
उत्पन्न होता है; पीत वा रक्त कभी नहीं होता; इसलिये परमा-
णुको यदि अनित्य मानें तो सृष्टिसे पहिले परमाणु भी न हुए;
तो सबसे पहिले जो सृष्टि हुई; उसका उपादान कारण कौन था
ईश्वरको उपादान मानें, तो ईश्वरमें रूपरस आदि गुण नहीं हैं;
इससे जगतके किसी पदार्थमें भी रूपरस आदि गुण नहीं चा-
हिये; इन बातोंसे सिद्ध हुआ, कि परमाणु नित्य और निरवयव
है, अर्थात् परमाणुके खंडभी नहीं होते। परमाणुसे भिन्न
द्व्यणुक आदि सारी पृथिवी अनित्य और अवयवों वालीहै; अर्था-
त् इस सारीके खंडभी होसकते हैं। और अवयवी (समुदाय) की
उत्पत्ति से पहिले और अवयवी के नाशसे पीछे भी अवयव (खं-
ड) बनेही रहतेहैं; जैसे घटकी उत्पत्ति से पहिले भी कपाल व-
र्तमान होतेहैं; घटके नाश होनेसे पीछेभी कपाल वर्तमान र-
हतेहैं; और घटकी उत्पत्तिसे पहिले अथवा घटके नाशसे पीछे
यहतो सबकोई मानते हैं; कि अब कपाल है, [illegible]
का है, परन्तु यह कोई नहीं कहता, कि अब
घट है, किन्तु उत्पत्ति से पहिले यह कहते हैं; कि घट होगा

श्रोर नाशसे पीछे कहते हैं, कि घटथा, इन सारी युक्तियोंसे सि-
द्ध हुआ, कि अवयव श्रोर अवयवी आपसमें पृथक् २ हैं; एक
किसी भांति नहीं होसकते। इससेभी विशेष ज्ञानके वास्ते
अनित्य पृथिवी तीन प्रकारकी जनाई है; जैसाकि शरीर, इंद्रि-
य श्रोर विषय, इन तीनोंमें शरीरका लक्षण चेष्टावत्व है; अर्था-
त् जो सुखदेने वाली वस्तुकी श्रोर झुके, श्रोर दुःखदेने वाली वस्तुसे
बचे, उसे शरीर कहतेहैं; जैसाकि मनुष्योंकी क्या बातहै, चिड़ियाको-
भी आगकी श्रोर छोड़ोतो अपनी प्रसन्नतासे आगमें कभी नहीं जावे-
गी; श्रोर आकाशकी श्रोर छोड़ो तो निशंक चलीजावेगी; शरीरसे
भिन्न घटआदि पदार्थोंको अग्निकी श्रोर गड़कावें, तो अग्नि-
में निश्शंक चले जावेंगे; पानीकी श्रोर गड़कावें, तोवहांभी
वैसेही चले जावेंगे; इससे यह सब शरीरनहीं हैं। पृथिवीका
शरीर चार प्रकारकाहै; जैसे जरायुज, अंडज, स्वेदज श्रोर उद्भिद
इनमें मनुष्य श्रोर पशुआदि जरायुजहैं; अर्थात् जरायु नामी
एक चमड़ेमें लिपटे हुए अपनी माताके गर्भसे निकलतेहैं। श्रो-
र सर्पवा पक्षीआदि सब अंडजहैं; अर्थात् अंडेमें बंधे हुए अपनी
माता के गर्भसे निकलतेहैं। जरायुज श्रोर अंडज इन दोनोंको
योनिजभी कहते हैं; अर्थात् अपनी २ माताके गर्भसे येही उत्पन्न
होतेहैं। मच्छड़, पिस्सू, जूका आदि जीव स्वेदज कहाते हैं; अर्था-
त् ये सब मलसे उत्पन्न होतेहैं। श्रोर वृक्ष लताआदि सब उद्भिद कहाते-
हैं; अर्थात् नीचेसे पृथ्वीको फाड़के ऊपरको निकलतेहैं। स्वेदज श्रोर उ-
द्भिद इनदोनोंको अयोनिजभी कहते हैं; अर्थात् येसब गर्भसे नहीं नि-
कलतेहैं। इंद्रियका लक्षण प्रत्यक्ष कारणत्व है; अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञा-
नोंमें प्रत्यक्ष हो उसे इंद्रिय कहतेहैं; जैसे रूप का प्रत्यक्ष चक्षु द्वारा होताहै ना-

इंद्रियं है, और पृथिवी की इंद्रिय घ्राण है, उसका लक्षण गंध प्रत्यक्ष करणत्व है; अर्थात् जिसके द्वारा गंधका प्रत्यक्ष हो, वह पृथ्वीकी इंद्रियहै; घ्राण उसका नामहै, सूक्ष्मरूप होके नासिका के आगे रहतीहै। और नासिकासे घ्राणको बड़ा अंतर है; क्योंकि नासिका एक स्थूल अवयव शरीरका है; परन्तु कई मनुष्योंकी नासिका तो वैसीही दीखपड़तीहै; और गंध उन्हें नहीं आता; कई मनुष्योंकी नासिका विकृत भी होतीहै; और गंधको वे भलीभांति ग्रहण करतेहैं; इससे सिद्ध हुआ, कि घ्राण नासिका नहींहै, किंतु नासिकाके आगे एक सूक्ष्म पार्थिव पदार्थ गंधके जनानेवाला घ्राणहै। और दो परमाणुओंके संयोग से द्व्यणुक बनताहै; तीन द्व्यणुकोंके संयोगसे एक त्र्यणुक बनताहै; यही त्र्यणुक जब झरोखोंमें धूप आतीहै, तो उड़ते हुए बड़े सूक्ष्म दीख पड़तेहैं; और चारों त्र्यणुकोंके संयोगसे एक चतुरणुक बनताहै; इसी भांति पांच चतुरणुकसे एक पंचाणुक और छे पंचाणुकका एक षडणुक और कई षडणुककी कपालिका कई कपालिकाओंका एक कपाल और दो कपालका एक घट ऐसा बनताहै; कि जिसमें सृष्टिकी समाप्ति होजातीहै; ऐसे पदार्थोंको अंत्यावयवी कहतेहैं। और द्व्यणुकसे अंत्यावयवी तक सारे गंधवाले पदार्थोंको पृथिवीका विषय कहतेहैं; जैसे घट, पट, पाषाण, मृत्तिका और काष्ठआदि, क्योंकि उपभोग साधनत्व विषयका लक्षण है; अर्थात् जो सुखका वा दुःखका साधनहो उसे विषय कहेंगे; और जो पदार्थ गंधयुक्त होके सुखका वा दुःखका साधन हो उसे पृथिवीका विषय कहतेहैं। कोई ऐसी भी आशंका करतेहैं, कि पृथिवीमें जो चौदह गुण माने हैं, यह असत्य है;

क्योंकि अपनी २ प्रकृति के सारे गुणोंको बाहरकी इंद्रियां ग्रहण करती हैं; परन्तु घ्राण (इंद्रिय) केवल पृथिवीके गंधकोही ग्रहण करती है; फिर रूप, रस और स्पर्श पृथिवीमें किसभांति मानतेहो; किंतु यहही मानना चाहिये, कि पृथिवीमें गंध विशेष गुणहै; जिसका पृथिवीकी इंद्रिय घ्राण से प्रत्यक्ष होताहै; जलमें रसही विशेषगुणहै; कि जिसका जलकी इंद्रिय रसनासे प्रत्यक्ष होता है; इसीभांति तेजमें केवल रूपही विशेष गुणहैं; जिसका तेजकी इंद्रिय चक्षुसेही प्रत्यक्ष होताहै, और वायुमें केवल स्पर्शही विशेष गुणहै; जिसका वायुकी इंद्रिय त्वचासेही प्रत्यक्ष होताहै; जैसाकि आकाश का विशेष गुण केवल शब्दही है; जिससे आकाशकी इंद्रिय श्रोत्रसेही शब्दका प्रत्यक्ष होता; और पृथिवी मे जलके संबंधसे रसकी प्रतीति तेजके संबंधसे रूपकी प्रतीति और वायुके संबंधसे स्पर्शकी प्रतीति होतीहै। जैसे पृथिवीके संबंधसे जलमें सुरभिजलं यह गंधकी प्रतीतिहै; अर्थात पृथिवीमें गंधतो समवाय संबंधसे रहताहै; और रस, रूप, स्पर्श स्वसमवायि संयोग नामी परंपरा संबंधसे रहतेहैं; इसीभांति जलमें रसतो समवाय संबंधसे और रूप, स्पर्श, तेज, वायुके संबंधसे अर्थात् स्वसमवायि संयोग संबंधसे रहते हैं। और तेजमें रूपतो समवाय संबंधसे रहता है; और स्पर्श वायुके द्वारा स्वसमवायि संयोगसे रहता है। इसका उत्तर यहहै, कि पृथिवीमें अथवा जलमें जेकभी रूप और स्पर्श न होवे, तो पृथिवी और जल का चक्षु(नेत्रों) से और त्वचा से प्रत्यक्ष न होना चाहिये; क्योंकि विषयता संबंधसे द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षमें समवाय संबंधसे रूप कारण और विषयता संबंध-

से त्वाच प्रत्यक्ष में समवाय संबंधसे स्पर्श कारणहै। और पृथि-
वी जलमें स्वसमवायि संयोग संबंधसे रूप, स्पर्श है, भी परंच स-
मवाय संबंधसे नहींहै; इसीलिये पृथिवी, जलका प्रत्यक्ष न
होना चाहिये। और यदि ऐसेकहे कि विषयता संबंधसे द्रव्य-
के चाक्षुष प्रत्यक्षमें कहीं समवाय संबंधसे रूपकारण है, कहीं
स्वसमवायि संयोग संबंधसे रूपकारण है; इसीभांति विषयता
संबंधसे द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्षमें कहीं समवाय संबंधसे स्पर्श का-
रण है, कहीं स्वसमवायि संयोग संबंधसे स्पर्श कारण है; इस
मे एक तो यहहै, कि जहां हम केवल समवायसे कारण मानते
थे; वहां तुम समवाय और स्वसमवायि संयोग इन दो संबंधों
से कारण मानते हो; यह बड़ा गौरव और प्रमाणसे विरुद्ध है।
गौरव मानके भी यदि प्रमाण से विरुद्ध बात मानलो, तो यह ब-
ड़ा दोष है, कि स्वसमवायि संयोग संबंधसे रूप जैसे पृथिवी
जलमें रहता है; वैसेही वायु आकाश कालआदिकों में भी स्वसम
वायि संयोग संबंधसे रूप रहगया; तो इनका भी प्रत्यक्ष नेत्रों (च
क्षुओं) से होना चाहिये। इसीभांति स्वसमवायि संयोग संबंध-
से पृथिवी जलमें जैसे स्पर्श रहताहै; वैसेही काल आकाश आ-
दिकों में भी स्वसमवायि संयोग संबंधसे स्पर्श रहता है; इस-
लिये आकाश आदिकोंका भी त्वचासे प्रत्यक्ष होना चाहिये।
क्योंकि आकाशआदि विभुहै; इसलिये इनका संयोग सारे मूर्तोंसे
बना ही रहताहै; अर्थात् स्पर्शके समवायि वायुका और रूपके
समवायि तेजका संयोग विभुओंसे (आकाशकालदिक् आत्मासे)
बनाहै; तो इन विभुओंका भी चक्षु और त्वचासे प्रत्यक्ष होना चा-
हिये, परन्तु होता नहीं; इससे यहही सिद्धान्त जानना चाहिये;

कि द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्ष में समवाय संबंधसे रूप और द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्ष में समवाय संबंधसे स्पर्श कारण है। और पृथिवी, जलका चाक्षुष प्रत्यक्षभी होताहै; इससे सिद्धहुआ कि पृथिवी में रूप, रस, गंध स्पर्श, ये चारों समवाय संबंधसे रहते हैं; जलमें रूप रस स्पर्श ये तीन गुण समवाय संबंधसे रहते हैं; तेजमें रूप स्पर्श ये दो समवाय संबंधसे रहते हैं, वायुमें केवल स्पर्श समवाय संबंधसे रहताहै, और आकाशमें शब्द समवाय संबंधसे रहताहै; यहनियम रूपरस गंधस्पर्श और शब्द इन पांच गुणोंमें है और घ्राण इंद्रिय से पृथिवी के गंध गुणकाही प्रत्यक्ष होताहै; रूप आदिकों का नहीं होता, इसमें यह युक्ति है, कि इन पांच गुणों में से जो गुण जिस इंद्रिय की सिद्धि कराता है; वह इंद्रिय उसी विशेष गुणको ग्रहण करती है। प्रकृतिमें इन पांचोंमेंसे चाहे दो रहें, परंतु इंद्रिय औरोंको ग्रहण नहीं करती; किंतु उस अपने साधक एककोही ग्रहण करती है; जैसे इन पांच गुणोंमें गंधही घ्राणमें पृथिवीत्व की सिद्धि करताहै; इसलिये पृथिवीमें चाहे कितने गुण रहैं; परंतु घ्राण केवल गंधकोही ग्रहण करेगा। इसीभांति रसना इंद्रियमें जलत्वकी सिद्धि उक्त पांच गुणोंमेंसे केवल रसही कराताहै, इसलिये जलमें चाहे उन पांचोंमेंसे कई रहें, परंतु रसना इंद्रिय केवल रसकोही ग्रहण करेगी। और चक्षुमें तेजस्त्वकी सिद्धि उन पांच गुणोंमेंसे केवल रूपही कराताहै; इसलिये चाहे तेजमें स्पर्शभी रहताहै, परंतु चक्षु इंद्रिय केवल रूपकोही ग्रहण करेगा। इसी रीति त्वचामें वायुत्वकी सिद्धि इन पांच गुणोंमेंसे स्पर्शही कराता है; इसलिये त्वक इंद्रिय केवल स्पर्शकोही ग्रहण

करती है। उस नियममें कोई प्रमाण नहीं है; कि वही इंद्रिय अपनी प्रकृतिके सारे योग्य गुणोंको ग्रहण करे; किन्तु इन पांच गुणोंमेंसे अपना साधक गुण चाहे अपनी प्रकृतिमें हो, चाहे किसी और में हो वह इंद्रिय उसे सब स्थानमें ग्रहण अवश्य करेगी। जैसा कि चक्षु इंद्रिय अपनी प्रकृति तेजमेंभी और पृथिवी जलमें भी सारे स्थानों में रूपको ग्रहण करतीहै; और त्वक् इंद्रिय अपनी प्रकृति वायुमें और पृथिवी आदिकों में भी सारे स्थानों में स्पर्शको ग्रहण करतीहै; यह अर्थ गौतम जी ने अपने सूत्रोंसे सिद्ध कियाहै; जैसे (गंध रस रूप स्पर्श शब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथिव्या अप्तेजोवायूनां पूर्वं पूर्वमपोह्याकाशस्योत्तरः) इस सूत्रका यहही स्पष्ट अर्थहै, कि गंध रस रूप स्पर्श शब्द इन पांचों मेंसे गंध रस रूपस्पर्श ये चार पृथिवी में, रस रूप स्पर्श ये तीन जलमें, रूपस्पर्श ये दो तेजमें और स्पर्श वायुमें शब्द आकाशमें इस रीतिसे पांच विशेष गुण रहते हैं। और गुणोंका द्रव्यके साथ समवाय संबंध कहाहीहै; इसलिये सब गुण समवाय संबंधसे इन ९ द्रव्योंमेंही रहते हैं ॥ और जल जिसे लोग पानीभी कहतेहैं; इसमेंभी चोदह गुण रहतेहैं, जैसे रूप, रस, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह, गुरुत्व, और वेग। लक्षण जलका शीतस्पर्शवत्वहै, अर्थात् जो शीत हो उसे जल कहते हैं; यद्यपि पाषाण आदि कई एक पार्थिव पदार्थभी ठंढे मालूम होतेहैं; तोभी उन्हें जलके संबंधसेही ठंढे जानना चाहिये, यथार्थ तो उनका स्पर्श अनुष्णाशीत अर्थात् मध्यमहै; जैसा कि मध्यम स्पर्श वायुकाभीहै; परन्तु वही वायु यदि धूपमें

घूमता हुआ, ऊखर स्थानसे आवे, तो बड़ा उष्ण मालूम होता है; और वही वायु यदि बड़े ह्रदमें वा किसी बड़ी नदीमें घूमके आवे, तो बड़ा ठंढा प्रतीत होताहै; और यदि वही वायु फुलवारीमें घूमता आवे, तो सुगंध भी देताहै, इसीभांति मलिन स्थानसे घूम के आवे तो दुर्गंध भी देताहै; इन बातों से यह सिद्ध हुआ, कि पाषाण आदि जो शीत कहातेहैं; तो जल के संबंधसे कहाते हैं; । इसीरीति तेजके संबंधसे उष्णभीकहाते हैं; यथार्थ उनका मध्यमस्पर्शहै । और जलवा पवन जो गंध वाले कहाते हैं; तो केवल पृथिवीके संबंधसे यथार्थ उनमें गंध नहीहै; अर्थात् गंध समवाय संबंधसे पृथ्वीमेंहीरहेगा जलआदिमें परंपरा संबंधसे अर्थात् स्वसमवायी संयोगसंबंधसे रहो समवायसे नरहेगा इसीभांति शीतस्पर्श समवाय संबंधसे जलमेंही रहेगा और उष्णस्पर्श समवायसेबंधसे तेजमेंही रहता है औरोंमें परंपरा संबंधसेही रहेगा । जलभी दो प्रकारका है, नित्य और अनित्य उनमें परमाणु नामी जल नित्यहै, और द्वाणुक आदि सब जल अनित्यहैं, एवंइभी इन अनित्यजलोंकेही होतेहैं। और अनित्य जलके भी तीनभेदहैं शरीर, इंद्रिय और विषय परंतु जलीयशरीर अयोनिजही होतेहैं; और चंद्रआदि लोकोंमें प्रसिद्धहैं और जिसमें चेष्टा और शीत स्पर्श दोनों समवाय संबंधसेहैं, उसे जलीयशरीर कहतेहैं, यह जलके शरीरका लक्षणहै। और खट्टा, मीठा आदि रसोंके जनाने वाला रसना नामी जिह्वाके आगे जलका इंद्रियहै, और हिमसे अर्थात् सूक्ष्म जलसे समुद्रतक जलका विषयहै, इससे वापी, कूप, तड़ाग, नदीआदि सब वि-

मयके अंदर आगये और रस प्रत्यक्ष करणत्व जलके इंद्रियका लक्षण है, कि जो रस के जाननेमें द्वारहो उसे जलका इंद्रिय जानना। और जो ठंढा पदार्थ सुखका वा दुःखका साधनहो उसे जलका विषय जानना ॥ तेजमें ग्यारह गुण रहतेहैं, रूप, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, वेग, समवाय संबंधेन उष्णस्पर्शवत्व तेजका लक्षण है, अर्थात् जिसके संबंधसे और पदार्थ तत्ते होजातेहैं, ऐसा जो साक्षात् आपही तत्ताहो, उसे तेज कहतेहैं तेज भी दो प्रकारकाहै, नित्य और अनित्य, उनमें परमाणु तेज नित्यहै, और द्व्यणुक आदि सबतेज अनित्य हैं; इन अनित्योंकेही खंड भी होसकतेहैं, और अनित्य तेजके भी तीन भेदहैं, अर्थात् देह, इंद्रिय और विषय परंतु तेजका शरीर अयोनिज अर्थात् गर्भसे विनाही होने वाला सूर्य आदि लोकोंमें प्रसिद्धहै। और रूपके जनाने वाला आंखोंमें कृष्णताराके आगे चक्षुनामी तेजका इंद्रिय है। और जिसमें उष्णस्पर्श, चेष्टाये दोनोंहो वह तेजका शरीर होताहै; और रूप प्रत्यक्ष करणत्व तेजके इंद्रियका लक्षणहै, अर्थात् जिसके द्वारा रूपका प्रत्यक्षहो वह तेजका इंद्रिय है। और जो उष्णस्पर्शवाला सुखका वा दुःखका साधनहो उसे तेज का विषय कहतेहैं; परंतु यह तेजका विषय चार संज्ञाओंसे विभक्तहै, जैसे भौम, दिव्य, औदर्य्य औरआकरज इनमें काष्ठ, गंधक आदि पार्थिव पदार्थोंसे जो अग्नि प्रगट हो, उसे भौम कहतेहैं। और पानीकी रगड़से जो अग्नि प्रगट हो उसे दिव्य कहतेहैं; जैसे प्रसिद्ध मेघकी बिजली, और उदरमें भोजन आदिको जो पकातीहै, और जिसके संबंधसे

देह उष्ण रहताहै, उसे औदर्य्य कहतेहैं। और स्वर्ण, चांदी, तांबा, लोहाआदि धातु जो खानोंसे निकलतेहैं, इन्हें आकरज कहतेहैं परन्तु स्वर्णआदि धातुओंमें पार्थिव भाग भी बहुतसा मिलाहै, जिस से इनका यथार्थ स्पर्श उष्ण नहीं प्रतीत होता, इससे स्वर्ण आदि सब मिश्रित पदार्थ जानने चाहियें क्योंकि केवल तेजोमय पदार्थको मनुष्य छूभी नहीं सकता जैसा कि अग्नि शिखाको मनुष्य छुए तो दाह अवश्य करताहै ॥ वायुमें नौ गुण रहतेहैं यथा स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, और वेग रूपरहितत्वेसति स्पर्शवत्व वायुका लक्षण है, अर्थात् जिसमें रूपनहो, और स्पर्शहो, उसे वायु कहते हैं। वायुके भी दो भेदहैं, नित्य और अनित्य परमाणु वायु नित्यहैं, और द्व्यणुकआदि वायु अनित्यहै, खंड भी इस अनित्यकेही हो सकतेहैं। और अनित्य वायु के भी तीनभेदहैं, देह इंद्रिय, और विषय इनमें भूत प्रेत पिशाच आदिका अयोनिज शरीर वायु का शरीर जानना, इसका लक्षण रूप रहितत्वे सतिचेष्टावत्वहै, अर्थात् जिसमें रूपनहो और चेष्टाहो उसे वायुका देहजानना स्पर्श प्रत्यक्ष करणत्व वायुके इंद्रिय का लक्षण है, अर्थात् जिस के द्वारा स्पर्शका प्रत्यक्ष हो, कि ठंढागर्म जानाजावे उसे वायुका इंद्रिय कहतेहैं, इस सारे शरीरके चर्म पर त्वक् नामी स्पर्श जानेका द्वार वायुका इंद्रियहै। और प्राण वायु से प्रलय वायुतक वायुका विषय है। इसविषय में प्राणआदि सबके वायु आगये, यद्यपि प्राण वायु एकहीहै, तोभी स्थान और क्रियाओं के भेदसे संज्ञाभेद होताहै, यथा हृदयसे चलके जो मुख और नासिकासे कभी बाहर आताहै, कभी अंदर जाताहै, उसे प्राण

कहतेहैं, और जो गुदाके मार्गसे नीचे जाताहै, उसे अपान कहते हैं, और जो नाभिके समीप शरीर की अग्निको बुझने नहीं देता व रूक जमाताहै, उसे समान कहते हैं, और जो वमन का हेतु कंठमें वायु रहताहै, उसे उदान कहतेहैं, और जो अकड़ाहट, कर्वाई आदिका हेतु सारे शरीरमें वायु रहताहै, उसे व्यान कहतेहैं ॥

आकाशमें छःगुण रहतेहैं, यथा संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग और शब्द आकाशका लक्षण शब्दवत्वहै, अर्थात् जिससे शब्द निकले उसे आकाश कहते हैं। और आकाश विभुहै, अर्थात् कोई पदार्थ वा स्थान ऐसा नहींहै, कि जिसे आकाशसे बाहर समुझें और आकाश एकहीहै नित्यहै, इसीसे इसके शरीर आदि भेद नहीं होसकते हैं, किंतु आकाशके विशेषगुण शब्दका प्रत्यक्ष जिसके द्वारा होताहै, वह श्रोत्रनामी आकाश का इंद्रिय भी एकही है, केवल कर्ण नामी पार्थिव पदार्थके भेदसे औपाधिक भेदहै। आकाशसे शब्द उत्पन्न होनेमें मुख्य यही युक्तिहै, कि जिस मृदंगमें आकाश अर्थात् पोलाड अधिकहो, उससे अधिक शब्द होताहै और जिसमें पोलाड़ न्यून हो उससे न्यून शब्द होताहै, और जिस मृदंगमें मिट्टी भरदी जावे तो वह शब्दको नहीं देता इन अनुभवोंसे सिद्ध हुआ, कि शब्द आकाशसेही उत्पन्न होताहै ॥ और कालमें पांचगुण रहतेहैं, यथा संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग कालका लक्षण ज्येष्ठत्व कनिष्ठत्व व्यवहार नियामकत्वहै, अर्थात् छोटा वा बड़ा समयसेही जानाजाताहै, किजिसका जन्म बहुत समयसे हुआ हो, वह बड़ा और जिसका जन्म थोड़े दिनोंसे हुआहै, वह छोटाहै। अथवा जन्य मात्रजनकत्व कालकालक्षण। अर्थात् सारी

कारण सामग्रीहोभी पानी सींचना आदि तोभी समयसे बिना पौषमें वा माघमें आमके वृक्षमें फल नहीं लगते, इससे सिद्ध आ, सारे कार्य्य अपने २ समय पर होतेहैं, जब पूरा २ समय पदार्थके उत्पन्न होनेका आताहै, तो किसीनाकिसी रीति सारी सामग्री आपसे आप इकठी होजाती है, अथवा पदार्थमात्र यावत्कालका लक्षण जानना, अर्थात् जो पदार्थथे, वेभी किसी समयमेंहीथे, और जो अबहैं, येभी किसी समयमेंही हैं और जो आगेहोंगे वेभी किसी समयमेंही होंगे, इससे सिद्ध हुआ, कि सारे जगतका आश्रय कालहै । यह काल एक, नित्य और विभुहै, केवल सूर्य्यकी क्रियाके भेदोंसे क्षण, घड़ी, पहर, दिन, मास, वर्ष आदि कल्पित भेदहैं, महाकाल तो फिरभी एकही है । और सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत् इस श्रुतिका यह अर्थहै, कि प्रलयसे पहिले सूर्य चंद्रमा आदि सृष्टि जैसीथी ब्रह्मा जीने फिर वैसीहि बनाई, इस श्रुति प्रमाणसे स्पष्ट प्रतीत होताहै, कि लगातार अनंत बेर सृष्टि उपजती है, और अनंतबेर प्रलयहोताहै, इन सृष्टि और प्रलयोंकी प्रक्रिया (रीति) यहहै कि जब वक्ष्यमाण इस श्रुतिके अनुसार ईश्वरको सृष्टिकी चिकीर्षा (करनेकी इच्छा) होतीहै, तो उस इच्छाके अनुसार परमाणुओंमें क्रिया उपजनेसे दोदो परमाणु मिलके द्व्यणुक और तीन तीन द्व्यणुक मिलकर एक त्र्यणुक चारचार त्र्यणुक मिलकर एक चतुरणुक इसीभांति ब्रह्मांडतक अपने २ परमाणुओंसे पृथिवी जल, तेज और वायु ये चारों उपजके सारी सृष्टिको फैलातेहैं, और जब ईश्वरको सृष्टिकी संजिहीर्षा (संहारकरनेकी इच्छा) होतीहै तो उसी इच्छाके अनुसार परमाणुओंमें क्रिया

उपजनेसे दो परमाणुओंका आपसमें विभाग होजाताहै, इस विभागसे दो परमाणुओंके संयोगका नाशहोजाताहै, इसी असमवायि कारणके नाशसे द्व्यणुक का नाश होताहै, और द्व्यणुकके नाशसे द्व्यणुकोंके संयोगका नाश क्योंकि ऐसा गुणकोई नहीं है, कि जो अपने आश्रयके नाशसे पीछेभी बनारहै, और संयोग गुणहै, इसलिये द्व्यणुक नामी अपने आधारके नाशसे अवश्य नष्ट होजावेगा, परंतु द्व्यणुकों का संयोग त्र्यणुक का असमवायि कारण है, और असमवायि कारणके नाशसे कार्यका नाश होजाताहै, इसलिये द्व्यणुकोंके संयोगका नाश होनेसे त्र्यणुकका नाश होजाताहै, इसीभांति त्र्यणुकके नाशसे त्र्यणुकोंके संयोगका नाशहोताहै, और इस असमवायि कारणके नाशसे चतुरणुक का नाश होताहै, और चतुरणुकके नाशसे चतुरणुकों के संयोगका नाश और इस असमवायि कारणके नाशसे पंचाणुकका नाश और पंचाणुक के नाशसे पंचाणुकोंके संयोगका नाश होताहै, इस असमवायि कारणके नाशसे कपालिकाओंका नाश होता है, इसीभांति कपालिकाओंके नाशसे कपालिकाओंके संयोगका नाश इस असमवायि कारणके नाशसे कपालोंका नाश होताहै, और कपालोंके नाशसे कपालोंके संयोगका नाश होताहै, इस असमवायिकारणके नाशसे घटका नाश होताहै, इसीरीति ब्रह्माण्डतक सारे जन्य द्रव्योंका जब नाश होजाताहै, तो उस समयका नाम प्रलय है, और जिस समय सारेभाव कार्योंका नाश होजाताहै उस समयका नाम महाप्रलयहै। परंतु कई आचार्य (ग्रंथबनानेवाले) कहते हैं, कि महाप्रलय नहीं मानना इसमें युक्ति यहदेते हैं कि ए-

थिवीके परमाणुओंमें रूप, रस, गंध और स्पर्श ये चारो गुण पाकके अनुरोधसे अनित्य मानेहैं; अर्थात् पृथिवीके परमाणुओंमें भी पाक होताहै; इसीलिये परमाणुओंमें ये चारो गुण अनित्यहैं; क्योंकि, पहिले रूपआदि चारो गुणोंका नाशकरके और रूप आदिकोंको जो उपजावे, इस तेजःसंयोगको पाक कहते हैं तो महाप्रलयमें जब सारे भाव कार्योंका नाश हो गया, मानो पार्थिव परमाणुओंके रूप रस गंध स्पर्श का भी नाशहोगया, क्योंकि येभी भावकार्य हैं। इससे प्रलय के पीछे पृथिवीमें रूप रसआदि गुण नहोने चाहियें; क्योंकि रूपआदिकोंके समवायिकारण तो परमाणु हैं; परंतु असमवायिकारण कोई नहीं है; और यदि पाकसे रूप आदिकोंकी उत्पत्ति मानके अग्निका परमाणुओंके साथ संयोगही असमवायिकारण माने, तो अग्निका संयोग नाश होजाने पर असमवायिकारणके नाशसे रूपआदिकोंका नाश होजाना चाहिये; अर्थात् परमाणुओंके रूपका नाश होजाने से सारा जगत नीरूप (रूपरहित) होजाना चाहिये; इन युक्तिओंसे सिद्ध हुआ, कि पार्थिव परमाणुओंके रूपरसआदि गुण अनित्य भीहैं; परंतु प्रलयमें उनका नाश नहीं होता; किंतु वेनेही रहतेहैं; इसी युक्तिसे महाप्रलयका खंडन करतेहैं ॥ जोजो पदार्थ जन्य (उत्पन्नहोनेवाले) हैं उन सबमें कालोपाधि होतीहै अर्थात् उन पदार्थोंके समकालमें होनेवाले अन्यपदार्थ कालिक संबंधसे उनमें रहतेहैं। इसीकालिक संबंधकी अनुयोगिता को कालोपाधिकहतेहैं; और इसीकालोपाधिके नहोनेसे महाकालसे अतिरिक्त नित्यपदार्थों में अर्थात् आकाशजातिआदिकोंमें कालिकसंबंधसे कोई

पदार्थ नहीं रहता; और कई ग्रंथकारोंका यह सिद्धांतहै; कि कालिक संबंधसे पदार्थ केवल महाकालमें रहतेहैं; किंतु महाकाल तो विभुहै; उसमें पदार्थ जिस जन्य पदार्थके संबंधसे रहेगा, वह जन्य पदार्थ महाकालकी वृत्तिताका अवच्छेदक (भेदक) कहाताहै; यह अवच्छेदकताही कालोपाधि है; जैसा कि इदानीं भूतले घटः अर्थात् अबभूतलमें घट है; इस प्रतीतिमें कालिक संबंध से घटका आधार तो महाकाल है; परंतु भूतलके संबंधसे घट महाकालमें रहता है; इसलिये घटमें जो महाकालकी आधेयता उसका अवच्छेदक भूतलहै; यह भूतलमें जो आधेयतावच्छेदकताहै, वहही कालोपाधिहै। इसीभांतिदिक् कृतविशेषणता संबंधसे सारे पदार्थ मूर्त्तोंमे रहतेहैं; औरदिक्में भी रहतेहैं, इसी संबंधकी अनुयोगिताको दिगुपाधिकहतेहैं। कई ग्रंथकार कालिक विशेषणताकी नाई दिक् कृतविशेषणता संबंधसे दिशामें सारे पदार्थोंकी अधिकरणता मानतेहैं; और मूर्त्तोंमें (दिकमें रहने वाली अधिकरणता निरूपित आधेयताकी) अवच्छेदकता मानकर इसी अवच्छेदकता को दिगुपाधि कहतेहैं। और नित्य, अनित्य सारे मूर्त्तोंमें दिगुपाधि माननेसे चाहे परमाणु निरवयव भी हैं; तो भी दो परमाणुओंका संयोग अव्याप्य वृत्ति होजाता है; क्योंकि परमाणुके पूर्वदेशमें जो संयोग है, वह पश्चिममें नहीं है; और जो उत्तरमें है, वह दक्षिणमें नहींहै; इससे अव्याप्यवृत्तिहै। यहां कोई लोग ऐसी आशंका करतेहैं; कि परमाणुआदि नित्य मूर्त्तोंमें भी जब दिगुपाधि रहतीहै; तो प्रलयमें भी पूर्व-पश्चिमआदि व्यवहार होना चाहिये। इसका उत्तर कई लोग यूं

भी कहते हैं; कि मूर्त्तोंमें से अनित्य मूर्त्तोंमेंही दिगुपाधि होतीहै, नित्योंमें नहीं होती, इसलिये प्रलयमें अनित्यमूर्त्तोंके नहोनेसे पूर्व पश्चिम आदि व्यवहार नहीं होता; परंतु सिद्धांत यह है, कि मध्यम परिमाणवाले उदयाचल, सुमेरु आदि स्थूल पदार्थही पूर्व पश्चिमआदि व्यवहारके नियामक हैं। और विभु अथवा अणु इन व्यवहारोंके नियामक नहीं हैं; और मध्यम परिमाण वाले सब अनित्यही होतेहैं, इसलिये प्रलयमें नहीं रहसकते तो इन नियामकोंके नहोनेसे प्रलयमें पूर्व पश्चिमआदि व्यवहार नहीं होता। दिगुपाधितो नित्य अनित्य सारे मूर्त्तोंमें रहतीहै; और कालिक विशेषणता अथवा दिक्कृतविशेषणता इन दोनोंको ही सिद्धांतमें वृत्ति नियामक संबंध कहतेहैं; और कोई ऐसाभी कहतेहैं, कि एकाधिकरण वृत्तित्वरूप परंपरा संबंध होनेसे ये दोनों वृत्यनियामक संबंध हैं; अर्थात् इनदोनों संबंधोंसे केवल संबंधिताही होती है, वृत्तिता नहीं होती ॥ दिक् में भी पांच गुण रहते हैं; संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग दिशाकालवश दूरत्वान्तिकादि धी हेतुत्व है; अर्थात् जो बहुतदेश लंघाहो, उसे दूर कहतेहैं और जो थोड़ा देश लंघाहो, उसे समीप कहतेहैं। यह दिक् एक नित्य और विभुहै; और पूर्व पश्चिम आदि व्यवहार सब उपाधिसे कल्पित हैं; जैसे जिसस्थानसे जो स्थान उदयाचलकी ओरहो, वह उस स्थानसे पूर्व कहाताहै। इससे उलटा पश्चिम कहाताहै, और जो स्थान जहांसे सुमेरु अर्थात् उत्तर केन्द्रकी ओरहो, वह स्थान वहांसे उत्तर कहाताहै; और इससे उलटा दक्षिण कहाताहै। परंतु प्रलय कालमें जब उदयाचल वा सुमेरु कोई भी नहींहै,

तो पूर्वआदि अवस्था उसेरहै; किंव महा दिक् एका नित्या श्रोर विभ्वीहै; पूर्वआदि भेदकल्पितहैं ॥ आत्माके दो भेदहैं, जीवात्मा श्रोर परमात्मा इनमेंसे जीवात्मामें चौदह गुणरहते हैं; बुद्धि, सुख दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, संख्या, परिमाण, पृथक्, संयोग विभाग, भावना, धर्म, अधर्म। जन्य ज्ञानवत्व वा जन्येच्छावत्व वा जन्ययत्नवत्व जीवात्माका लक्षणहै; अर्थात् जिसका ज्ञान, इच्छा वा यत्न अनित्य हो; उसे जीवात्मा समझना । श्रोर शरीर इंद्रिय आदिसवतभीतक कुच्छकरसकतेहैं; जवतक जीवात्माका संबंध रहताहै । पीछेसे ये सब मृत्तिकाके तुल्यहैं, परंतु मृत्तिका में सुख दुःख आदिकी कल्पना अनुचितहै; जिससे मृत्तिकामें ज्ञानइच्छा आदि नहींहै; इसलिये सिद्धहुआ, सुखदुःखआदि गुण चेतनमेंही रहतेहैं । परन्तु चेतनतो ईश्वरभीहै, उनमें सुखआदिका होना असंभवहै; इसलिये प्रति शरीरमें भिन्न २ सुखदुःखज्ञानआदिकोंका आश्रय चेतन जीवात्मानामी अधिष्ठातामानतेहैं । क्योंकि कोई करण वा साधन विनाचेतनकी सहायताके किसीकामकोभीनहीं करसकता; जैसाकि कुठार श्रोर लकड़ी चाहे कितना चिर इकट्ठे पड़े रहें, तो एक तृणभी नहीं कटाजाता, जबतक कोई चेतन उस कुठारको न चलावे । इसी भांति चक्षुआदि करण विना अधिष्ठाताके कुच्छ नहीं करसके । इन इंद्रियोंका स्वामी शरीरनहीं होसकता, क्योंकि मरनेसे पीछे पड़ाहुआ शरीर कुच्छ नहीं करसकता, जब शरीर चेतन हुआ, तो पाप पुण्य सुखदुःख आदि शरीरमें रहेंगे; परंतु पूर्व जन्मका शरीर वहांही नष्ट होगया, तो पु-

र्व जन्मके कर्म्मोंका फल इस जन्ममें नहोना चाहिये। कर्म्म फल अवश्यमानना पड़ताहै; क्योंकि कईजीव जन्मसे मरण तक केवल दुःखही भोगतेहैं; कई जीव केवल सुखही भोगते हैं; कई औरोंका एकविषयका दूसरा सुखहै, तो अपर विषयका उन्हें दूसरा दुःखहै; परंतु जीवात्माको चेतन और स्वामी भी माननेसे सारे दोष हटजातेहैं; क्योंकि जीवात्मा नित्यहै, तो एक जन्मके छोड़ सैंकड़ों जन्मोंके अपने किये कर्म्मोंका फल भोगे, तोभी कोई विरोध नहीं आता। इंद्रियोंको भी चेतन नहीं कहते, क्योंकि यह बात युक्ति सिद्ध है, कि अनुभूत पदार्थोंका ही स्मरण होताहै; अर्थात् जिस मनुष्यने जो वस्तु देखीहो; उसी मनुष्य को उस वस्तुका स्मरण होगा; परंतु जब इंद्रियों को चेतन मानातो ज्ञान आदिसब इंद्रियोंमें रहे; फिर रूपका प्रत्यक्ष चक्षुमें हुआ; तो रूपका स्मरण भी चक्षुमेंही होगा॥ परंतु जिस मनुष्यने अनेक वर्णोंके भिन्न२ वस्त्र वनाश्रक्खे हों; फिर दैव वशसे वह अंधाहोगया; तो उस समयमें उसके चक्षु नहींहैं, तो उसे सब पदार्थ दीखने चाहियें; यदि चक्षु नहीं हैं, तो रूपोंका स्मरण नहीं होना चाहिये। और मनभी नहीं चेतन है; क्योंकि एक क्षणमें दो ज्ञान नहीं होसकते; इससे मन को परमाणु रूपमानतेहैं; परंतु जब मनको चेतन माना, तो ज्ञानआदि सब मनमें रहे, इसलिये परमाणुके रूप रसआदिकी नाईं ज्ञान सुख आदिका भी प्रत्यक्ष नहीं होना चाहिये। क्योंकि परमाणु का प्रत्यक्ष जब नहीं होता तो परमाणुके धर्म्मोंका प्रत्यक्ष कैसे होगा। और ज्ञानआदिके संबंधसे अपने २ जीवात्मा का प्रत्यक्ष होताहै; जैसा मैं सुखी हूं, इस शरीर में तो सुखदुःख

कोई नहीं हैं; किंतु इस यथार्थ वाक्यमें, मैं, शब्दसे जीवात्माकाही प्रत्यक्ष होता है। और पर शरीर में चेष्टाआदिसे जीवात्माका अनुमान किया जाताहै; जैसे इस रथमें कोई चलानेवाला अवश्य है; जिससे सीधे मार्गसे भली भांति रथ चला जाताहै। इसीरीति इस शरीर में आत्मा अवश्य है, जिससे यह शरीर भलीभांति चलता फिरता खाता पीताहै। यदि पराये जीवात्माका प्रत्यक्ष माने वा सारे शरीरोंमें एक जीवात्मा माने, तो एक पुरुषके सुख दुःख आदि दूसरे पुरुषकोभी मालूम होने चाहिये। और ये प्रत्येक जीवात्मा विभु, नित्य, अल्पज्ञ, चेतन पाप पुन्य और सुखदुःखके आश्रय, और पराधीन हैं॥ परमात्मा अर्थात ईश्वरमें आठ गुण रहतेहैं, जैसे संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, बुद्धि, इच्छा और यत्न ईश्वर का लक्षण नित्यज्ञानवत्वहै; अर्थात जिसका ज्ञान नित्य एक और सारे जगतको बोध कराता है; उसे ईश्वर कहतेहैं। अथवा नित्येच्छावत्व ईश्वरका लक्षण जानना, अर्थात जिसकी इच्छा एक नित्य और सारे पदार्थोंकी हो, उसे ईश्वर कहतेहैं॥ अथवा नित्ययत्नवत्व ईश्वरका लक्षण जानना; अर्थात जिसका यत्न एक नित्य और सारे जगतके कार्य्योंका कारण है; उसे ईश्वर जानना। यह परमात्मा विभु, नित्य, सर्वज्ञ, चेतन, पाप पुन्य सुखदुःखआदिसे रहित, स्वतंत्र प्रभु, जीवोंको यथायोग्य पाप पुण्योंके फलदेने वाला, सारे पक्षपातों को छोड़के सारे जगतका स्वामी, परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध है; यद्यपि ईश्वरका प्रत्यक्ष नहीं होता; तोभी अनुमानआदि अनेक प्रमाणोंसे ईश्वर सिद्ध होता है। और नास्तिक लोग जब ईश्वरका खंडन करके कह

तेहैं; कि स्वभाव सेही सारा जगत उपजता भी रहता है, और छिपता भी रहता है तो कोई ऐसा प्रयोजन नहीं, कि जिससे ईश्वर नामी एक पृथक् पदार्थ मानें। तब उनके सामने ईश्वर की सिद्धिमें "द्यावाभूमिं जनयन्" इत्यादि श्रुतियोंका प्रमाणदेना, सर्वथा अयुक्त प्रतीत होताहै। क्योंकि ईश्वरने अपने मुखसे इनका उच्चारण किया है; इसीसे सब श्रुति प्रमाण हैं; परंतु जो नास्तिक ईश्वरको ही नहीं मानेगे, तो वे श्रुतियोंको प्रमाण कभी नहीं मानेगे। इस दशामें वेदान्ती आदि कोई शास्त्रकार भी नास्तिक को युक्तिसे सिद्ध करके ईश्वर नहीं मना सकते; किंतु नैयायिकही सबसे आगे बढ़के अनुमान की युक्तिओंसे सिद्ध करके नास्तिकके मुखसे ईश्वर मनातेहैं। क्योंकि प्रत्यक्षसे तो ईश्वर नहीं सिद्ध होसकता; रूप के नहोनेसे ईश्वरका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता, स्पर्शके न होनेसे त्वाच प्रत्यक्ष भी ईश्वरका नहीं होसकता; और घ्राण रसना श्रोत्र इन तीन बहिरिंद्रियों से किसी द्रव्यका प्रत्यक्ष नहीं होता, तो ईश्वरका प्रत्यक्ष कहांसे होवेगा। और मन नामी आभ्यंतर इंद्रियसे तो केवल अपने २ जीवात्मा का प्रत्यक्ष विशेष गुणोंके संबंधसे होताहै; जैसा कि सुख के संबंधसे अहं सुखी क्या मैं सुखी हूं;। और मेरे विभु जीवात्माका संयोग अन्य पुरुषोंके मनोंसेभी बनाहै; पर मेरे सुख दुःख आदिकों का प्रत्यक्ष अन्य पुरुषों को नहीं होता; इससे अपने आत्मासे भिन्न आत्मा में जो नरहे, ऐसा (आत्मासे साथ मनका) संयोग आत्मा के मानस प्रत्यक्षमें कारण है। परन्तु ईश्वरके साथ जो मेरे मन का संयोग है, वह मेरे जीवात्मासे भिन्न आत्मा में क्या

ईश्वरमें रहने से, मानस प्रत्यक्ष का कारण नहीं होसकता, इसलिये सन्निकर्ष (व्यापार) के न होनेसे ईश्वरका मानस प्रत्यक्ष भी नहीं होसकता। किन्तु अनुमान प्रमाणसेही ईश्वर सिद्ध होताहै; जैसा कि घट कार्य्य की नाईं जगत में जो २ कार्य्य हैं, सब कर्ता करके जन्य हैं, अर्थात् विना कर्ता के कोई कार्य्य नहीं होता; परन्तु पृथिवी, सृष्टिके आदिका द्व्यणुक, और पत्थर, काष्ठ, आदिकों में कीट, ये सब भी कार्य्य हैं; इससे कर्ता से विना नहीं उत्पन्न होसकते। परन्तु कोई शरीर धारी जीव इन कार्य्योंकाकर्ता नहीं होसकता; क्योंकि पृथिवीकी उत्पत्तिसे पहिले विना आधारके शरीरी जीवका होनाही असिद्ध है; कि जहां स्थित होकर उसने पृथिवी रची हो। और द्व्यणुक त्र्यणुक चतुरणुक कपालिकाआदि अवयवों की उत्पत्तिसे अनन्तरही शरीरआदि अवयवियोंकी उत्पत्ति होसकतीहै; इसलिये सृष्टिके आदिमें जब द्व्यणुक भी नहीं उत्पन्न हुआ, तब शरीरका होना सर्वथा असंभव है। इससे पहिले द्व्यणुक का कारण भी शरीरधारी जीवात्मा नहीं होसकता। और काष्ठ पत्थर आदि अति कठिन पदार्थों में शरीरीका प्रवेशही नहीं होसकता; कि जिससे उनमें जा कर कीट आदिको उत्पन्न करे, और यह बात प्रत्यक्षही दीख पड़ती है, कि चेतन के साहाय्य विना अचेतन परमाणु आदि कुछभी नहीं कर सकते। जैसाकि लकड़ी और बड़ी तीखीधारवाला कुल्हाड़ा ये दोनों चाहे बरसों एक स्थानमेंही पड़े रहैं; पर कुछ कार्य्य नहीं कर सकते, किंतु तिखाण आदि कोई चेतन जब आवे, तो उसके साहाय्यसे वह कुल्हा-

ड़ा थोड़े समयमेंही उस काष्ठ को काट देता है। इसीसे कुल्हा-
ड़े को करण और तिखाण को कर्ता कहते हैं; क्यों मुख्य कर्ता
चेतनही होताहै। जीवात्मा चेतन तोहै पर उक्त कार्योंके
करनेकी सामर्थ्य इसमें नहींहै; इसलिये जिसको आधार
शरीर आदिसे कुच्छ संबंध नहीं, ऐसा सर्वशक्तिमान् (सर्वज्ञ)
विभु स्वतंत्र ईश्वरही उक्त कार्योका कर्ताहै। और जगत में
कई लोग जन्मसे दुःखी कई जन्मसे सुखी और सुखी दुःखी
भी दीख पड़तेहैं, इस विचित्रता का नियामक केवल अदृष्ट
(पाप पुण्य) ही होसकताहै; क्योंकि ईश्वरको सबेजीव एकसेही हैं;
ऐसा नहींहै, कि कोई ईश्वरका बहुत प्याराहै; इससे बहुत सुखीहै
और कोई ईश्वरका बड़ा विरोधीहै; इससे बहुत दुःखीहै। किंतु
अपने उत्तम कर्मो (अदृष्टों) से सुखी और मंद कर्मोसे दुःखी और
मिले हुए कर्मोसे सुखी दुःखी होताहै। परंतु अचेतन कर्म विना
चेतन की सहायता के कुच्छ नहीं करसकते; और जीवात्माको अद-
ष्टोंका प्रत्यक्षही नहीं होता; इससे जीवात्माका साहाय्य अ-
दृष्टोंमें कुच्छ कार्य नहीं सिद्ध करसकता। किंतु जिस चेतन
के साहाय्यसे उत्तम कर्मका उत्तम फल मंदकर्मका मंद फल
और मध्यम कर्मका मध्यम फलही होताहै; विपरीत फल
नहीं होते, वह सबका स्वामी ईश्वर अवश्य मानना चाहिये॥
इन युक्तिओंसे ईश्वर को सिद्ध करके आस्तिक लोगोंको यह
संदेह नहो, कि नैयायिक केवल युक्तिसेही ईश्वरकी सिद्धि
करताहै, श्रुतिप्रमाण नहीं देसकता, इससे द्यावाभूमि जन-
यन्देवएकः और यः सर्वज्ञः सर्ववित् इत्यादि श्रुतिभी ईश्वर-
की सिद्धिमें प्रमाण जाननी॥ क्योंकि उक्त श्रुतिओंमें से

पहिली का अर्थ व्याकरण के अनुसार यह ही होताहै; कि स्वर्ग और पृथिवी को उत्पन्न करके जो एक सारे जगत की रक्षा करता है; वह स्वतंत्र ईश्वर है। और दूसरीका यह अर्थ है, कि परमाणुसे ब्रह्मांड तक सारे पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान जिसमें स्वभाव सेही इंद्रिय आदिकोंकी अपेक्षासे विनाही सामान्य रूपसे और विशेष रूपसेभी बना रहताहै; वह सर्ववित् ईश्वर है। और यः सर्वज्ञः सर्ववित् इसी श्रुति से प्रतीत होताहै; कि वेदांती लोग जो परमात्मा को ज्ञान स्वरूप मानते हैं; यह व्याकरण से सर्वथा विरुद्धहै। परंतु व्याकरणसे विरुद्ध अर्थ किसी शास्त्रमें भी प्रमाण नहीं माना जाता

क्योंकि सर्वज्ञ शब्द (सर्वं जानाति) इस व्युत्पत्तिसे ज्ञा धातु के आगे कर्त्तामें क प्रत्यय ले आकर बनाहै; तो सर्वशब्दसे उत्तर द्वितीया का अर्थ कर्मता अर्थात् विषयता सर्व शब्दका अर्थ सारे पदार्थ ज्ञा धातु का अर्थ ज्ञान और क प्रत्यय का अर्थ कर्त्ता आश्रयता संबंध तो संबंधकी आकांक्षासे ही प्रतीत होजाताहै; शाब्दबोध यह होताहै, सारे पदार्थोंके ज्ञान का आधार, इस शाब्द बोध में प्रत्यय के अर्थ कर्ता को छोड़ना युक्तिसे सर्वथा विरुद्धहै; क्योंकि सारे पदार्थो का ज्ञान इतनाही अर्थ यदि आप करेंगे; तो भावमें ल्युट् प्रत्यय आकर सर्व ज्ञान ऐसा शब्द सिद्ध होगा, सर्वज्ञ शब्द नहीं सिद्ध होगा॥ और आत्माको ज्ञान स्वरूप मानके जीवात्मा और परमात्मा का अभेद माननेसे एक बड़ा दोष यह आताहै॥ कि विना विषयके कोई ज्ञान नहीं होता, और इसका नियम कोई नहीं बन सकता कि घट ही उस ज्ञानका विषय है; पट आदि पदार्थ नहीं विषय हैं॥

क्योंकि ज्ञान तो एकही माना है; तो वही ज्ञान इन्द्रियोंके संबंध से घट आदि पदार्थोंको भी जना देता है; इससे मालूम हुआ, कि कोई एक ही पदार्थ ज्ञानका विषय नहीं किंतु सारे पदार्थ इस ज्ञानके विषय हैं। इससे सब सर्वज्ञ होने चाहिये, परंतु केवल ईश्वर ही एक सर्वज्ञ है; और जीवात्मा कोई भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता। और यह भी है कि ज्ञान नित्य मानते हो अथवा अनित्य नित्यमानने में यह दोष है, कि सुषुप्ति में भी अर्थात् सोए हुए पुरुष को विषयोंका बोध होना चाहिये; क्योंकि बिना विषयके कोई ज्ञान नहीं होता; और नैयायिकों के मतमें जीवात्मा नित्य भीहै; पर सुषुप्ति (गाढ़निद्रा) के समय त्वचाके साथ मनका संयोग नहोनेसे ज्ञानकी सामग्री के नहोने से कोई ज्ञान नहीं होता। और वेदांती ज्ञानको अनित्य माने तोभी निर्वाह नहीं होता; क्योंकि पूर्वजन्मके ज्ञान का मरने से जब नाश होगया; तो चेतन में रहने वाले अदृष्टों का भी आधारके साथ ही नाश होगया, तो अब इस जन्ममें वह सुखी हो, अथवा दुःखीहो इसका नियम कोई नहीं बांध सकता। और न्यायके मतमें जीवात्मा नित्यहै; इसमे रहने वाले अदृष्ट का बिना भोग (अपनाफल) के नाश नहीं होता इसमें श्रुति भी प्रमाण है जैसे नाभुक्तंक्षीयते कर्मकल्पकोटिशतैरपि इसका अर्थ यह है, कि चाहे सैकड़ोंकल्प (युग) बीत जावें पर बिना अपना फल दिये, कर्म नहीं निवृत्त (नष्ट) होता। और स्वप्नमें अथवा रज्जु सर्प इस भ्रमके समयमें जो प्राति भासिक पदार्थ वेदांती मानते हैं; कि स्वप्नके समय जो नगर आदि प्रतीत होतेहैं; वे उस समय वहां उत्पन्न होतेहैं।

और फिर नष्ट होजाते हैं, इसी भांति रज्जु में जब सर्पका भ्रम होताहै; वहां उस समय सर्प उत्पन्न होताहै; और फिर नष्ट हो जाताहै। यह बात सर्वथा युक्तिसे विरुद्ध है; क्योंकि विना समवायिकारण के कभी कोई कार्य उत्पन्न नहीं होसकता; स्वप्नमें जो नगर आदि उत्पन्न होते हैं, उनका समवायि कारण कोई नहीं होसकता; क्योंकि नगर आदि स्थूल पदार्थोंके परमाणु साक्षात समवायिकारण नहीं होसकते; किंतु द्व्यणुक त्र्यणुक आदिकों के द्वारा। और स्थूल पदार्थोंके नाशसे पीछे उनके अवयवों का प्रत्यक्ष अवश्य होताहै; जैसा कि घट के नाशसे पीछे कपालोंका प्रत्यक्ष होताहै; परंतु स्वप्नसे अनंतर अथवा भ्रमसे अनन्तर उन नगर आदि पदार्थोंका अथवा सर्प आदि पदार्थोंका कोई अवयव (खंड) कहीं भी नहीं दीखता; इसलिये स्वप्न वा भ्रांतिके समय विना समवायिकारण के प्रातिभासिक पदार्थोंकी उत्पत्ति सर्वथा युक्तिसे विरुद्ध है; किंतु रज्जुत्व के साथ जो चक्षुः संयुक्त समवाय सन्निकर्ष है, ज्ञानलक्षणा के द्वारा सर्पत्व के अलौकिक प्रत्यक्षसे पीछे दोषसे वह सन्निकर्ष सर्पत्व में प्रतीत होताहै; और चक्षुः संयोग रज्जु से होताहै; इसलिये सर्पत्वरूप (धर्म) से रज्जुका भान होताहै; इसे मिथ्या ज्ञान कहते हैं। इसी भांति स्वप्नका भी अयथार्थ ज्ञानही नैयायिक लोग मानते हैं; और जीवात्मा परमात्मा के अभेद मानने में बंधमोक्षका व्यवहार सर्वथा नहीं सिद्ध होसकता; क्योंकि परब्रह्म में धर्म अधर्म नामी बंधकी प्राप्ति विना बंधन की निवृत्ति नामी मोक्षका होनाही असंभवहै; क्योंकि पहिले बंधन हो तो निवृत्त होताहै।

और केवल प्रतिबिंब रूपी औपाधिक बंधन मानो, तो एकही ब्रह्म बद्ध और मुक्त भी हुआ; तो बंधन और मोक्ष इन दोनोंका विरोध किसी भांति भी नबन सका; अर्थात् बंधन के समय भी मुक्त हैं तो मोक्षके अर्थ पातंजल वेदांत आदि शास्त्रोंका अभ्यास करना व्यर्थ है; क्योंकि मोक्ष नामी फल पहिलेही प्राप्त है। और यदि ऐसा कहें, कि जैसे वृक्षमें शाखावच्छेदेन कपिसंयोग और मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभाव भी रहता है; इसीरीति ब्रह्ममें एक शरीरावच्छेदेन बंधन और अन्य शरीरावच्छेदेन मोक्ष रहता है; और अवच्छेदकोंके भेदसे विरोध भी उपपन्न होजावेगा। तो क्या शाखा और मूल जैसे वृक्षके अवयव हैं; ऐसे शरीर सब ब्रह्मके अवयव हैं; अर्थात् ब्रह्म अनित्य है, तो पूर्व कर्मोंके भोगकी अनुपपत्ति लगीही रहेगी। और निर्द्धर्मिक परब्रह्ममें उपाधिकी कल्पनाकरके उस उपाधिसे बंधन मानना भी युक्तिसे बाहर है; क्योंकि दिगुपाधि कालोपाधि आदि किसी उपाधिकी प्राप्ति परब्रह्ममें नहीं है; तो इनसे बढ़के कौनसी उपाधि है, जिसने परब्रह्ममें प्राप्त होकर बंधमोक्षका व्यवहार उत्पन्न किया। और "बहुस्याम्" इस श्रुतिके अर्थको यदि उपाधि कहो, तो सिद्ध हुआ, कि बहुत होनेकी इच्छाही उपाधि है; परन्तु ज्ञानस्वरूप निर्द्धर्मिक परब्रह्ममें इच्छाका होनाही असंभव है। और जगत्‌का उपादान कारण लाघवसे एक मायानामी पदार्थ मानके जो परमाणुओंको नहीं मानना, अथवा अनित्य मानना यह भी अयुक्त है; क्योंकि चाहे कोई भावकार्य हो, समवायि कारण द्रव्यही होता है जैसाकि घटका समवायि कारण कपाल

द्रव्यहै; अर्थात् जन्यद्रव्यों के समवायिकारण अपने अवयव (खंड) वे द्रव्य ही होतेहैं। और तृतीय रूपका समवायि कारण घट वह भी द्रव्यही है; अर्थात् जन्य गुणोंके समवायिकारण भी द्रव्यही होतेहैं। इसी भांति दंडमें जो क्रिया होतीहै; उसका समवायिकारण दंड भी द्रव्यहीहै; अर्थात् जिस द्रव्यमें जो क्रिया होगी, उस क्रियाका समवायिकारण वही द्रव्य होगा। और द्रव्यगुण कर्म इनतीनोंसे अतिरिक्त कोई भाव कार्य नहीं है, क्योंकि सामान्य विशेष और समवाय ये तीनों नित्यहैं, तो प्रतीत हुआ, कि यदि माया समवायिकारण है, तो अवश्य द्रव्य है। परन्तु द्रव्य ऐसा एक कोई नहीं, जो सारे भाव कार्योंका उपादान कारण हो, क्योंकि पृथिवी आदि रूपआदिकोंके उपादान हैं; परंतु ज्ञानआदिकोंके उपादाननहींहैं, और ज्ञानआदिकोंके उपादान जीवात्माहै, वे रूपआदिकोंके उपादान नहीं हैं। और प्रयोजन से विना माया नामी इसको द्रव्यमानना भी युक्ति से बाहरहै; और माया को द्रव्य मानने में बड़ा दोषहै; कि वह माया सावयवहै, अथवा निरवयवहै यदि मायाको सावयव कहो, तो घट आदि सावयव पदार्थों की नांई अवश्य अनित्य माननी पड़ेगी; क्योंकि सावयव कोई भी नित्य नहीं होता। और माया अनित्य हुई, तो यह दोषहै, कि उस माया की उत्पत्तिसे पहिले और मायाके नाशसे अनंतर सृष्टि का सामान्याभाव होजाना चाहिये; क्योंकि समवायि कारण से विना कभी कोई कार्य नहीं बन सकता। और सारे जगत की समवायिकारण माया यदि अनित्यहै, तो उस मायाका समवायिकारण कोई अन्य पदार्थ मानना पड़ेगा उसका उपा

दान कोई और, इसी भांति अनवस्था दोष लगेगा, परन्तु अनवस्थित पदार्थका मानना वितंडा के सदृश होनेसे सब शास्त्रों से विरुद्धहै। और माया को यदि निरवयव कहो, तो परब्रह्म की नाईं अवश्य नित्य माननी पड़ेगी, क्योंकि निरवयव भाव पदार्थका किसीका भी नाश नहीं होता; और माया यदि नित्य हुई तो मोक्षकी सर्वथा अनुपपत्ति हुई; क्योंकि बंधन कीकारण नित्य माया अपने कार्यों को सदाही उपजाती रहेगी। और रूप रसआदि गुण मायामें मानते हो, वा नहीं? यदि मायामें रूप आदि मानो तो यह दोषहै; कि वायुमेंभी अवश्यरूप होना चाहिये; क्योंकि उपादानकारण के रूप रसगंधस्पर्श कार्यमें अवश्य होतेहैं, यह प्रत्यक्षसेही सबकार्यों में दीखता है। इसी युक्तिसे नैयायिक लोग "आत्मनः आकाशः संभूत" इत्यादिश्रुतिओं का अर्थ वेदान्तसे विरुद्ध उत्पत्ति के स्थान प्रगट होनाही मानतेहैं; क्योंकि आत्मा को यदि आकाशका समवायिकारण माने, तो आकाश में शब्द गुण नहीं होना चाहिये; और ज्ञान इच्छा आदि आत्माके गुण आकाशमें अवश्य रहने चाहियें। इसी भांति वायुका समवायिकारण यदि आकाश हो, तो वायुमें स्पर्श न होना चाहिये, और शब्द अवश्य होना चाहिये। और वायुमें शब्दका होना इष्ट मानें, तो त्वगिंद्रिय से शब्दका प्रत्यक्ष भी होना चाहिये। और तेजका उपादान कारण यदि वायु हो, तो तेजमें रूप नहोना चाहिये। और जलका उपादान तेज हुआ, तो जलमें रस न होना चाहिये। और पृथिवीका उपादान यदि जल हो, तो पृथिवीमें गंध न उत्पन्न होना चाहिये, क्योंकि समवायिकारण के रूप रस आदिक

गुणही नियम से कार्य में होतेहैं । और इस श्रुतिसे उपादान कारणोंका यदि बोध हो, तो वेदांतियोंके मतसे बड़ा दोष यह है; कि सारेकार्योंकी उपादानकारण माया को मानकर पृथिवीका उपादान जल, जलका उपादान तेज, तेजका उपादान वायु, वायुका उपादान आकाश और आकाशका उपादान कारण आत्मा यह कथन सर्वथा असंगत है; किंतु आत्मा आदि आकाश आदिकोंके ज्ञापक (बोधक) हैं। और "देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढां" इत्यादिवाक्योंके द्वारा विना प्रयोजनके अनिर्वचनीय (जिसका लक्षण कुछ नहो सके) माया नामी पदार्थका स्वीकार भी युक्तिसे बाहर है; क्योंकि रागद्वेष मोह इन तीन दोषोंका कारण अज्ञान (भ्रम) ही उक्तवाक्योंमें माया, प्रधान, आत्मशक्ति इत्यादि संज्ञाओंसे बंधनका कारण मानाहै । जैसाकि गौतमजीने भी तत्वज्ञानसे मोक्षका क्रम लिखाहै; "दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापायेतदनंतरापायादपवर्गः" इसका यह तात्पर्य है, कि तत्वज्ञान और मिथ्याज्ञान इन दोनोंका आपसमें ऐसा विरोध है; कि एक समय ये दोनों एक आश्रयमें कभी नहीं रहते । क्योंकि जहां जो वस्तु नहीं है, उस स्थानमें उस वस्तुका जानना मिथ्या ज्ञान होताहै । और जहां जो वस्तु है, वहां उस वस्तुका जानना तत्व ज्ञान कहाताहै । और यह बात कई युक्तिओंसे सिद्धकर आए हैं; कि जहां जिस वस्तुका निश्चय जबतक बनारहे, वहां तबतक उसवस्तुके अभावका ज्ञान कभी नहीं होता । इसीरीति जबतक जहां जिसवस्तु के अभावका निश्चय हो, तबत-

कि वहां उस वस्तुका ज्ञान कभी नहीं रहता। परन्तु तत्त्वज्ञान जहां जो वस्तु है, वहां उस वस्तुके जाननेका नामहै। इससे यह तत्त्वज्ञान अपने स्वाभाविक विरोधसेही जहां वह वस्तु नहीं है; वहां उस वस्तुका ज्ञान नहोने देगा, अर्थात् मिथ्याज्ञान को उत्पन्न नहीं होने देगा। परन्तु विना मिथ्याज्ञान के राग द्वेष मोह नामी तीन दोष नहीं उपजते; इसलिये मिथ्याज्ञान नामी कारणके नाशसे राग द्वेष मोह इन तीनों दोषोंका नाश होजाता है; और ये तीन दोष धर्म अधर्म नामी प्रवृत्तिके कारण हैं, इसलिये दोषोंके नाशसे धर्म अधर्म का नाश होता है; और शरीर के साथ पहिला प्राणका संयोग जन्म कहाता है, इसी भांति शरीर के साथ सबसे पिछले प्राणके संयोगका नाश मरण है; जन्म और मरण इन दोनोंका कारण धर्म अधर्म है, इसलिये धर्म अधर्मके नाशसे जन्मका नाश होताहै; परन्तु शरीर के संबंधसे विना सुख अथवा दुःख का होनाही असंभव है; इसलिये जन्मके नाशसे दुःखका नाश होताहै, इसीबीज समेत दुःखोंके नाशकोही मोक्ष कहतेहैं। इस सूत्रकी सम्मतिसे भी प्रतीत हुआ, किसारे संसार नामी बंधनका आदि कारण मिथ्याज्ञानही है; चाहे उसे माया कहे चाहे प्रकृति, प्रधान कुछ कहलो; परन्तु यह अज्ञान निमित्त कारणही होसकताहै, उपादान कारण किसी रीति नहीं होसकता। और ईश्वरके साथ जीवों का अभेद माननेसे बड़ा दोष यह आताहै; किहमही जब परब्रह्मरूप

की भक्ति हम करें, और कोई हमसे अधम पदार्थ नहीं है, कि जिसके चित्त को रोकके परब्रह्ममें लगावें; क्योंकि यथार्थमें परब्रह्मसे अतिरिक्त कोई पदार्थही नहीं है । इसलिये भक्ति उपासना समाधि इन सबका व्यवहारही उठाजाता है; अर्थात् हम परब्रह्मस्वरूप सदाही मुक्त हैं, बंधनकी तो केवल मिथ्या कल्पनाहीहै; इस आध्यात्मिकी दृष्टिसे सदा संसारचक्रमेंही फसे रहते हैं, मुक्त नहीं होते ॥ मीमांसाकार जो यज्ञसे मोक्ष मानते हैं; यहभी अयुक्त है, क्योंकि यज्ञमें पशुओंके मारनेसे, बीजोंके गाड़नेसे जोपाप उत्पन्न होताहै; उसके साथ मिला हुआ धर्म (पुण्य) उपजताहै; शुद्ध धर्म नहीं उपजता, जिससे मोक्ष हो । इसीसे यज्ञोंसे जिस स्वर्गकी प्राप्ति होती है, वह भावकार्य है; इससे उसका नाश भी होजाताहै ॥ और इसीसे स्वर्गमें न्यूनाधिकता भी बनी रहती है; अर्थात् किसी यज्ञ (ज्योतिष्टोम) से तो केवल स्वर्गकी प्राप्ति होती है; और किसी यज्ञ (वाजपेय) से स्वर्गके राज्यकी प्राप्ति होती है; परन्तु मोक्षमें न्यूनाधिकता कभी नहीं होसकती; इससे सिद्ध हुआ, कि बिना तत्वज्ञानके केवल यज्ञादिकोंसे मोक्षका होना सर्वथा असंभव है; और यदि तत्वज्ञान को भी कारण मानेतो यज्ञ आदिकोंको मोक्षमें कारण मानना व्यर्थ है ॥ और कपिलजी ने जो जगतका उपादानकारण एक प्रकृतिको मानके परमाणुओंका खण्डन कियाहै; गौरव दोष देकर और सत्व रज तम नामी तीन गुणोंकी विचित्रता से जगत की विचित्रता मानी है । इस मतमें अभाव पदार्थ को नमानके स्वर्ग आदिकोंको अनि-

मनुआदिके नामसे ईश्वरके अलौकिक शरीर उत्पन्न हो-
तेहैं; इसीसे जबलोगोंके अदृष्ट उत्तम अर्थात् पुण्य रूप
अधिक होतेहैं; तो अवतार सात्विक अर्थात् सौम्यहोताहै;
और जब लोगोंके अदृष्टोंमें अधम अदृष्ट अर्थात् पापअ-
धिक होतेहैं; तो परमेश्वरका तामस अर्थात् क्रूर अवता-
र होताहै। इसी भांति जगतके अदृष्टोंमें जब पाप और
पुण्य दोनों तुल्य हों तो राजस अर्थात् ऐसा अवतार होता
है; कि जो ना बहुत क्रूर और बहुत सौम्य होताहै। इस
से सिद्ध हुआ, कि ईश्वरमें चाहे अदृष्टका संबंध नहीं है, तो
भी सारे जगतके अदृष्टसेही ईश्वरका अलौकिक शरीर
उपजता है। और अवतारोंके बहुत से ऐसे प्रयोजन भी
हैं; कि जो ईश्वरके अलौकिक शरीर से विना कभी नहीं
होसकते; जैसा कि जब २ असुरआदि दुष्टलोग सनातन वे-
दों और धर्मशास्त्रों अथवा दर्शन आदि शास्त्रोंको (जलमें
डुबानेसे अथवा आगमें साड़ने से वा किसी और रीतिसे)
छिपादेतेहैं; तो परमेश्वर अवतार धारण करके उन छिपे
हुए शास्त्रोंको प्रगट करतेहैं। मनुष्यकी सामर्थ्य किसीकी
नहींहै, कि सारे जगतमें जिन शास्त्रोंका मूल नहीं है; उन्हें
प्रगट करे। जैसे सांख्यशास्त्र कपिलजीने न्यायशास्त्र दत्ता-
त्रेय जीने और वेदांत पुराण आदि व्यासदेवजीने प्रगट कि-
याहै; और मत्स्य अवतार मे शंखासुरको मारके वेदोंको स-
मुद्रसे निकालना, और कूर्मावतारमें समुद्र मथनेकेलिये मं-
दाचल पर्वतको पीठपर उठाना, इसीभांति वाराह अवतारमें
हिरण्याक्ष जैसे महादैत्यको मारके समुद्रमेंसे पृथिवीको

निकालना, और नृसिंह अवतारमें अग्निसे बड़े तपे हुए खंभे को फाड़के निकलना, और हिरण्यकशिपु जैसे महादैत्य को मारके अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षाकरनी, और वामन रूप धारणकर एक पांउके नीचे सारी पृथ्वी और एक पांउके नीचे सारा आकाश दबादेना; और इतनी सामर्थ्य होनेपर भी बलिको पातालका राज्य देके आप द्वारपाल बनकर साधारण भृत्यों की नाईं द्वारपर खड़े रहना। इत्यादि और बहुत से अलौकिक कार्य्य विना ईश्वरकी सामर्थ्यके मनुष्य से होने सबरीति असंभवहैं; इन सब युक्तिओं से यही स्पष्ट प्रतीत होताहै, किसारे जगतके अदृष्टोंसे ईश्वरका अलौकिक शरीर उत्पन्न होताहै, उसे अवतार कहतेहैं। और कईलोग यूं भी कहतेहैं कि भैरवआदिकोंके आवेशकी नाईं जगतके अदृष्ट से किसी मनुष्यके शरीरमें ही ईश्वर के आवेश हो जाने से अलौकिक कार्य्य सब उपजने लगते हैं। इस मतमें भी विना ईश्वर (परमात्मा) की कृपाके अवतार होना, और उससे अलौकिक कार्योंका उपजना किसी रीति भी बुद्धिमें नहीं आता, तो यही सिद्ध हुआ, कि अवतारोंको मनुष्य कहना अथवा मनुष्योंको देवता कहना सब रीति शास्त्रसे और युक्ति से विरुद्धहै; किंतु इतनाहोसकताहै, कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि जो २ देवताहैं, उन सबको एक परमेश्वरही जानना चाहिये, केवल अपनी २ उपासना और मंत्र यंत्र आदिका ही भेद जानना चाहिये॥ और आत्माके ज्ञान आदि विशेषगुणों का समवायिकारण तो जीवात्मा होताहै; आत्माके साथ मन का संयोग असमवायि कारण होताहै; और अदृष्ट (पुण्यपा-

में) इष्टसाधनता ज्ञानकाल ईश्वरआदि निमित्तकारण होते हैं। और परिमाण में परिमाणु के तुल्य मनहै, वेग इसका सबसे अधिक है, इसीसे क्षण २ में मनका और क्रियाहोती है; इसक्रियाके पलटनेसे क्षण २ में मनके पहिले संयोगका नाशहोकर और २ संयोग उपजते रहतेहैं; अर्थात् इन असमवायिकारणोंके नाशसे ज्ञानोंका भी क्षण २में नाशहोतारहताहै; इन्हीं युक्तिओंसे सिद्ध होताहै, कि आत्माके योग्य विशेष गुण सारे क्षणिकहैं; अर्थात् पहिले क्षणमें उपजके दूसरे क्षणमें स्थित और तीसरे क्षणमें नष्ट होजाते है। और भावना अदृष्ट ये भी जीवात्मा के विशेष गुणहैं; तीनक्षणमें इनका चाहे नाश नहीं भी होता, तोभी कुछ नियमकी हानि नहीहै; जिससे ये योग्यनहीं अर्थात् इनका प्रत्यक्ष नहीं होता, ऊपरके नियम में योग्य पद देनेका यहीतात्पर्य है; कि जिनका प्रत्यक्ष होसके ऐसे जीवात्माके विशेषगुणक्षणिकहैं। और कणादने प्रत्यक्ष अनुमान ये दोहीप्रमाण चाहे मानेहैं; तोभी प्रमाणोंके विषयमें गौतमजीका मतही उत्तम समझके चार प्रमाण इस न्यायबोधिनीमें लिखेहैं; क्योंकि वेदोंको साक्षात् शाब्द प्रमाके करण नमानके परंपरासे अनुमिति प्रमाके करण माने; तो अंतमें नास्तिकही बनना पड़ताहै; क्योंकि अनुमान भी प्रत्यक्ष मूल काही प्रमाण होताहै; जैसाकि गंगेश उपाध्यायने भी चिंतामणिमें अनुमान खंडका प्रारंभकरते हुए लिखाहै। प्रत्यक्षोपजीवकत्वात्प्रत्यक्षानंतरं बहुवादिसम्मतत्वादुपमानात्प्रागनुमानंनिरूप्यते, इनअक्षरोंसे स्पष्ट प्रतीत होताहै, कि प्रत्यक्ष

कारणहै, अनुमानका और गौतमजीके सूत्रोंसेभी यह बात
स्पष्ट प्रतीत होतीहै; जैसे अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पू-
र्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टंच इससूत्रमें तत्पद है, प्रत्यक्ष
लेकर अनुमानमें प्रत्यक्षजन्यत्व भाष्यमें स्पष्टही सिद्धकिया
है; इनसब प्रमाणोंसे सिद्धहुआ, कि अनुमानभी प्रत्यक्षज
न्यही प्रमाण होताहै; अर्थात् प्रत्यक्षही प्रमाण केवल मान
ना चाहिये; परंतु नास्तिक उन्हीका नामहै; जो केवल प्रत्य
क्षकोही प्रमाण मानतेहैं; अब कणादके मतमेंभी केवल
प्रत्यक्ष ही प्रमाण सिद्ध होताहै; तो ये भी एक नास्तिकहीहैं।
इससे ग्रंथका सिद्धान्त यही समुझना, कि कणाद वा गौतम
अथवा जैमिनिआदिसे कुछ प्रयोजन नहीहै; किंतु जो मत
वेदोंसे विरुद्ध नहो, और भक्तिके द्वारा परमात्माको सबसे
उत्कृष्ट सिद्धकरै; और तर्क (युक्ति) के द्वारा वैदिक (वेदमे
कहेहुए) धर्मोंका निश्चय करावे; वहीमत ग्रहण करनेके
योग्यहै। जैसाकि मानवधर्ममेभी लिखाहै कि यस्तर्केणा
नुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः इससे स्पष्ट प्रतीत होताहै, कि त
र्क (युक्ति) के जानने विनाधर्मका ज्ञान कभी नहीं होता;
अर्थात् युक्तिके जानने विना मनुष्य यह नहीं कहसकता;
कि यह काम करना चाहिये, अथवा यह काम नकरना चा
हिये। और इस ग्रंथमें युक्तिसे विरुद्ध किसीशास्त्रकारकी
आज्ञाकभी प्रमाण नहीं मानी जावेगी; और श्रुतिसे वि
रुद्ध अथवा सूत्रोंसे विरुद्ध तर्कभी प्रमाण नहीं माने जायें
गे; किंतु वेदों और सूत्रोंसे सम्मत तर्कों (युक्तियों) के
द्वारा सिद्ध किये हुए पदार्थ, किसी नये ग्रंथकारके कथन-

से विरुद्धभी होंगे, तो अवश्य मानलिये जावेंगे । और इस भांति साधर्म्य वैधर्म्यसे जब दृढ़तर तत्त्वज्ञान होजावे तो अ-रण्य (वन) गुफा नदी तीर आदि उपाधि रहितस्थानोंमें बै-ठकर योगशास्त्रकी रीतिसे अन्य पदार्थोंसे चित्त को खेंचकर केवल परमात्मामें लगावे । उसके अर्थ ये आठ योगके अंग अवश्य जानने चाहिये; जैसे कि यम नियम आसन प्रा-णायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि ये आठ योग-के अंगहैं; इनमेंसे यम पांच प्रकारकाहै, अहिंसा (किसीजी-वको नहीं मारना) सत्य (झूठसेबचना) अस्तेय (चोरीसेबच-ना) ब्रह्मचर्य (व्यभिचारसेबचना) और अपरिग्रह (महादानों सेबचना) । और नियम भी पांच प्रकारका है, जैसे शौच (प-वित्ररहना,) संतोष (पराये पदार्थपर चित्तनहीं ललचाना,) तप (तपस्याकरनी,) स्वाध्याय (वेदपढ़ना) और ईश्वरप्र-णिधान (सबओरसे खेंचकर चित्तको ईश्वरमें लगाना) । और पद्मासन कुशासन आदि आसन योगशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं; और आसन स्थिर होने पर वायुकी गतिका रोकना प्राणायाम है । और घ्राण रसना आदि बहिरिंद्रियों को गं-ध रस आदि अपने २ विषयोंसे हटाना प्रत्याहार कहाताहै । और मनको सारे स्थूल पदार्थोंसे हटाकर नाभिचक्र आदि कुंडलिनीके चक्रोंमें ठहराना धारणाकहाती; इसधारणा-कोही निरंतर लगातार होना ध्यान कहाताहै; इसी ध्यान को निदिध्यासन भी कहतेहैं । और संपूर्ण विषयोंको त्या-गकर केवल निराकार निर्गुण परमात्मामें चित्तकास्थिर होना, समाधि कहाताहै । और तत्व (यथार्थस्वरूप) का

निश्चय, अथ इन दोनोंमेंसे किसी एकका साधक, प्रतिज्ञा आदि पांच अवयवों से सिद्ध किया हुआ, वाक्योंका समूह कथा कहाता है। अर्थात् विद्वान् लोग तत्वनिश्चय कर नेकेलिये अथवा जय पराजयकेलिये युक्तिओंसे सिद्धक र २ के आपसमें वाक्यविलास करते हैं; उस वाक्योंके स मूहका नामकथाहै। यह कथा उत्तम मध्यम और अ धम भेदसे तीन प्रकारकी वात्स्यायन जीने अपने भाष्यमें लिखीहै जैसे कि तिस्रः खलुकथाः भवन्ति वादो जल्पो वितण्डाचेति अर्थात् वादजल्प और वितंडा ये तीन प्रका रकी कथा है; और इसी कथाके लक्षण से मालूम होता है, कि जो पुरुष तत्वनिर्णयकी अथवा जय पराजय की अपेक्षा रखें, उन्हीं का इन कथाओंमें अधिकार है; सबका इन कथाओंमें अधिकार नहीं और विरुद्ध दो कोटिओं (प क्षो) में सिद्धांत कोटि जानने केलिये जय पराजय की इच्छा छोड़कर यथार्थ प्रमाणों से अपने अपने पक्ष की सिद्धि और यथार्थ तर्कोंसे दूसरे पक्षोंका खंडन जिसमें करते हैं; और हेत्वभास न्यून अधिक और अपसिद्धांत इन चारोंसे विना और कोई निग्रहस्थान जिसमें कभी नहीं आवे; और छल अथवा जाति ये दुष्ट उत्तर भी जिसमें कभी नलियेजावें उस वाक्य समूह को वाद कहते हैं। और जय पराजय की इच्छा छोड़कर केवल तत्वबोधकी इच्छावाले और क्रोध, पक्षपात आदि छोड़ युक्ति सिद्ध पदार्थो पर निश्चय करने वा ले, और समय पर योग्य पदार्थ निरूपण करते हैं, उन्ही पुरुषों की वाद में अधिकारहै। और छलआदि दुष्ट उत्तरों के निषे

षसेही स्पष्ट प्रतीत होताहै कि तीनों कथाओंमें वाद सर्वो-
त्तम है; और कई लोग यूं भी कहते हैं कि राजा और म-
ध्यस्थ (विद्वान लोग) जिस सभामें हों, वहांही वाद होस-
क्ता है; यह बात सर्वथा युक्ति से बाहरहै, क्योंकि जय परा-
जय की इच्छा न होने से स्पष्ट मालूम होताहै, वादके अ-
धिकारी तबही होतेहैं; कि जब रागद्वेष आदि दोष निरस्त
होलेवें। और जब निर्दोष हुए तो उनके विवाद आदि वि-
कारोंके कारण नहीं हैं; कि जिनसे उपजे हुए विकारोंको
हटाने के लिये राजाकी अथवा सभ्य विद्वानोंकी अपेक्षा
पड़े; इससे स्पष्ट प्रतीत हुआ, कि तत्वबोधकी इच्छावाले
पुरुषोंकी वाद नामी उत्तम कथामें राजा और मध्यस्थोंकी
कुच्छ अपेक्षा नहीं है। और जीतने की इच्छासे जिस कि-
सी प्रमाण अथवा प्रमाणाभास (दुष्टप्रमाण) से अपने
पक्षकी सिद्धि और जिस किसी तर्क अथवा तर्काभास (दु-
ष्टतर्क) से दूसरे पक्षका खंडन जिसमें करतेहैं; और छल
जाति निग्रहस्थान ये सारे दुष्ट उत्तर जिसमें लिये जातेहैं; औ-
र जिसमें वादी प्रति वादी दोनों पुरुष छलआदि जिसकिसी
उपायसे अपने अपने पक्षको शास्त्र संमत किये जातेहैं;
उस वाक्य समूह को जल्प कहतेहैं। इस कथामें जयकी
इच्छावाले पुरुष अधिकारी होतेहैं; परंतु जयकी इच्छा राग
वा द्वेषसे उपजतीहै; इसी से यह मध्यम कथा कहातीहै।
और केवल छलजाति आदि दुष्ट उत्तरोंके बल पर शास्त्र
युक्तिओंसे सबरीति विरुद्ध केवल दूसरे को जीतनेकी इ-
च्छासे जो विवाद(झगड़ा) किये जातेहैं; उस वाक्य समूह

को वितंडा कहतेहैं । मूर्ख उद्धत पशुओंके समान मनुष्य इसकथाके अधिकारी होतेहैं; और शास्त्र युक्तिओंमें विरुद्ध वाक्य जिससे इसमें लिये जातेहैं; इसलिये यह कथा सबसे अधम कहाती है । महात्मा लोग मरते तकभी वितंडा में नहीं प्रवृत्त होते; वरुक जल्पसे भी घृणाही रखते हैं; किंतु महात्मा लोग जब कुछ पदार्थोंका विचार करते हैं; तो वाद कथाकी रीति से ही करते हैं; इससे स्पष्ट मालूम होताहै, उत्तम पुरुष वादमें, मध्यम पुरुष जल्पमें और अधम मनुष्य वितंडा में प्रवृत्त होतेहैं ॥ और युक्ति से एक अर्थके अभिप्राय से किसी पुरुष के कहे वाक्य का विरुद्ध अर्थ अपनी ओर से बनाके खंडन करना छल कहाताहै; जैसा कि किसीने संस्कृत में कहा कि अयंनेपालादागतोनवकम्बलवत्वात् इसअनुमानमें कहने वाले पुरुषने नव नयेका वाचक रखाहै; और प्रतिवादीने नव शब्दको तो संख्या का वाचक मानके जो इस अनुमानका खंडन कियाहै; कि इसके पास तो एकही कंबल है, तो कंबल कहांहै, इसे छल कहतेहैं । इस छलके तीन भेदहैं, वाक् छल, सामान्यछल और उपचारछल इन प्रत्येकके लक्षण ग्रंथ बढ़जानेके भयसे नहींलिखे विस्तारसे वात्स्यायन भाष्यमें देखलेने । और व्याप्ति नियमकी अपेक्षासे विनाही साधर्म्य वा वैधर्म्य से जो दूषण देना उसे जाति कहते हैं । और दूसरे पुरुष का कहा उलटा समुझना, अथवा नहीं समझना उसे निग्रहस्थान कहतेहैं । और जाति (साधर्म्य सम). आदि चौवीस प्रकारकी है; और निग्रहस्थान (प्रतिज्ञा हानि) से आदि लेकर

बाईस प्रकार केहैं परंतु छल जाति और निग्रहस्थान ये ती
नों ऐसे दुष्ट उत्तर हैं; कि अपने ही पक्षकी हानि करते हैं;
दूसरे का कुच्छ नहीं बिगाड़ सकते, इसलिये बुद्धिमान
लोग ऐसे उत्तर देनेमें कभी नहीं प्रवृत्त होते; इन सबके
विशेष लक्षण और विस्तार गोतम सूत्रोंमें देखने चाहिये।
और गोतमजीनेजो "प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टा
न्त, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हे
त्वाभासछल, जाति, निग्रहस्थान" यह सोलह पदार्थस्वी
कार किये हैं; उनमेंभी सारे जगतके पदार्थ साक्षात नहीं
आसकते, जैसाकि परिमाण संख्या संयोग विभाग इत्या
दिगुण और उत्क्षेपण आदि पांचोकर्म इसीभांति समवा
यआदि कई पदार्थ इन सोलह पदार्थोंमें से किसी एकमें
भी नहीं आसकते; किन्तु अभ्युपगमसिद्धान्तके द्वारा वै
शेषिक (कणाद) सूत्रोंमे लिये जातेहैं। "जोपदार्थ सू
त्रमें नामलेके नहीं कहागया हो; किंतु युक्तिसे वह अवश्य
मानना पड़े, और अन्य शास्त्रमें साक्षात (नामलेके) कहा
गया हो, उस पदार्थके माननेमें जो परस्पर विचार करना"
इसको अभ्युपगम सिद्धान्तगोतम जीने अपने सूत्रमेंही क
हाहै; जैसाकि सू- "अपरीक्षिताभ्युपगमात्तद्विशेषपरीक्ष
णमभ्युपगमसिद्धान्तः" और केवल आत्मा शरीर इंद्रिय
अर्थ बुद्धि मन प्रवृत्ति दोष प्रेत्यभाव फल दुःख अपवर्ग"
इन बारह पदार्थोंके तत्वज्ञानसेही मोक्ष मानना; अन्यपर
थोंकी आकांक्षा छोड़ देनी, इसमें कोई दृढ़ प्रमाण नहीं दी
ख पड़ता; किंतु सबसे उत्तम कणादजीका मतकि जिससे

गोतमजीने कई पदार्थ द्रव्य आदि लेकर अपनेसूत्रोंमें साक्षात् (नाम) से लिये हैं। जैसाकि द्रव्य गुण कर्म्मभेदाच्चोपलब्धिनियमः। इस गोतमसूत्रमें स्पष्ट प्रतीत होता है; कि द्रव्यआदि पदार्थ कणाद सूत्रों सेही गोतम जीने लिये हैं; क्यों कि प्रमाण आदि सोलह पदार्थोंमे कहीं भी द्रव्य आदिकों का वर्णन क्या नामभी नहीं आया; कणाद जीका यह सिद्धान्त है, कि द्रव्यआदि संज्ञाओंसे जगतके सारे पदार्थोंको यथार्थ रूपसे जानके, आत्मासे अतिरिक्त सारे पदार्थोंसे चित्तको हटाके, बड़े यत्नसे आत्मामेंही लगाना। फिर सामान्य आत्मामें चित्तको स्थिरकरके सारे जीवात्माओंको पराधीन जानना और ईश्वरको स्वतंत्र जानना और धर्म अधर्म नामी कारण के संबंधसे सुखदुःखका भोग साक्षात् (समवायसंबंधसे) जीवात्मामेंही समुझना; इसीधर्म अधर्मके नहोनेसे परमात्मा (ईश्वर) में सुखदुःखभी नहीं मानना; और जीवात्माओंके (ज्ञान, इच्छा, यत्न) इन तीनों गुणों का विषय बहुत ही थोड़ा होनेसे जीवात्मा अल्पज्ञ है। दो अथवा तीन क्षणतकही रहने अर्थात् अपनी उत्पत्ति से चौथे क्षणतक कहींभी नरहनेसे जीवात्माके ज्ञान इच्छा यत्न अनंत होतेहैं; और इसीसे द्वेष भावना येगुण भी जीवात्मामें रहतेहैं। परमात्मा के ज्ञान इच्छा यत्न ये तीनों गुण एक और नित्यहैं; सारे पदार्थ इनके विषय हैं; इसीसे ईश्वर सर्वज्ञ और स्वतंत्र है; द्वेष भावना ये गुण भी ईश्वरमें नहीं रहते। परमात्मा जीवात्मा ये दोनों ही विभु हैं; इसीसे नित्य भी हैं। ये सभ ठीक २ जानके जिस सर्वज्ञ स्वतंत्र

जगतके कर्त्ता जगदीश्वरकी कृपासे हमारे उत्तम, मध्यम, अधम कर्म्मोंका संकर (गड्बड) नहीं होना पाता, किन्तु सभका यथार्थ और योग्य फलही मिलताहै; जीवात्माआदि सारे पदार्थोंसे चितको हटाके अपने उस स्वामीपरमेश्वर मे चित्तवृत्ति को लगाना। कि अनुमानकी युक्तिओंसे और श्रुतिओंके द्वारा जिसका निश्चय कर चुके हैं; अपने आपको उसके किं करोंके किंकर (दास) जानके दिनरात उसीका धन्यवाद करना; कि धन्य वह जगदीश्वर जिसकी सामर्थ्यसे सारे जगत के अपूर्व २ (जिनकी रचनामें जीवोंकी बुद्धि भी नहीं पहुंच सकती) अनंत पदार्थ लीलासेही उपजते रहते हैं, जिसकी आज्ञामें बंधे हुए सूर्य चंद्रमा वायु आदि कभी अपने २ कार्यमें न्यूनता अथवा अधिकता नहीं कर सकते; जिसकी इच्छासे सारे जगतका पालन हो रहा है; जिसकी इच्छासे क्षण २ में अनेक पदार्थोंका प्रलय (नाश) हो रहा है; औरक्या पामर (गंवार) लोगभी अपने कार्यके प्रारंभ में विश्वकर्माआदि अपने २ अनंत शद्बोंसे जिसको प्रणाम करके कार्यसिद्ध करते हैं। उसी जगदीश्वर में चित्तवृत्ति को सारे पदार्थों से हटाकर स्थिर करनाही तत्वज्ञानका प्रयोजनहै; और इसीसे जीवोंका मोक्षभी होताहै। इन सब युक्तिओंसे प्रतीत हुआ, कि भक्ति और उपासनाके द्वारा मोक्ष देनेमें कणाद (वैशेषिक) शास्त्रसारे अंशोंमें न्यूनतासे हीनहै; वेदांत मीमांसा सांख्य पातंजल न्याय इन पांचोंमेंसे एक २ मोक्षका हेतुहै; इसमें संदेह नहीं, परंतु पीछे युक्तिओंसे सिद्धकर आए हैं, कि इनमतों के द्वारा भक्ति नहीं

होसकती, किंतु भक्ति करने वालोंको उचित है, कि कणाद के मतको भलीभांति आदिसे अंततक विचारें इसीसे उनका कल्याणहै। और वेदांतआदि छहो दर्शनों में से किसी एक का भी आनंद पूरा २ लेनाचाहै, तो प्रथम कणादका मत अवश्य देखे, क्योंकि वैशेषिक शास्त्रपढ़े विना व्यापकत्व, व्याप्यत्व, व्यभिचार, बाध, आदि शब्दोंका भाव पूरा २ नहीं मालूम होता; और इन शब्दोंका भाव जानने विना कोई भी शास्त्र आदिसे अंततक यथार्थ में समुझा नहीं जाता। इससे सिद्ध हुआ, कि जो महात्मा दर्शनोंका आनंद लेना चाहें; वे वैशेषिक दर्शन को पहिले भलीभांति देखें, तो कि सब दर्शनोंमें पूरा २ अधिकार होजावे ॥ मनमें आठगुण रहतेहैं, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग। मनका लक्षण सुखादि प्रत्यक्ष कारणत्व है; अर्थात् जिसके द्वारा सुखआदिका प्रत्यक्ष हो, उसे मनकहते हैं, परन्तु मनुष्यका मनजब एक ओर होताहै, तो दूसरे पदार्थ को कभी नहीं समझता; इससे प्रतीत हुआ, कि मन बड़ा सूक्ष्म अर्थात् परमाणु के तुल्यहै; यदि मन बड़ा होतो एक ओर चक्षुसे छूके दूसरी ओर घ्राणसे छूके अनेक ज्ञान एकक्षणमें उत्पन्न करा देवे ॥ पृथिवी के परमाणु, जलके परमाणु, तेजके परमाणु, वायुके परमाणु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन येह सब नित्यद्रव्यहैं; इनका आधार कोई नहीं अर्थात् संयोग वा समवाय आदि संबंधोंसे यह कहीं नहीं रहते हैं; और अनित्य पृथिवी, अनित्यजल, अनित्यतेज, अनित्यवायु, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, सम

वाय, और अभाव यह सब विना आधार के कभी नहीं रहते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन इन पांचोंको मूर्त्त कहते हैं; इन्हीं पांचोंमें क्रिया, दूरत्व, सामीप्य, मध्यम परिमाण और वेग, येह पदार्थ रहतेहैं। आकाश काल दिक् और आत्मा यह चार विभुहैं; अर्थात् इनका परिमाण सबके परिमाणों से बड़ा और सारे मूर्त्तोंसे इनका संयोग संबंध बनाइ रहताहै। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांचोंको भूतकहतेहैं; अर्थात् आत्मासे विना विशेष गुण इन्हीं पांचोंमें रहते हैं। पृथिवी, जल, तेज, और वायु इन चारका लक्षण स्पर्शवत्वहै; अर्थात् स्पर्श इन्हीं चारोंका होता है; और किसी पदार्थका स्पर्श नहीं होता द्रव्यकी उत्पत्तिभी इन्हीं चारोंमें होतीहै। पृथ्वी, जल, तेज इन तीनोंका लक्षण रूपवत्वहै; अर्थात् नील पीत आदि रूप इन्हीं तीनोंमें रहते हैं; द्रव्यत्व भी इन्हीं तीनोंमें रहताहै, आंखोंसे भी इन्हीं तीनों द्रव्यों को देखसकतेहैं। पृथ्वी जलका लक्षण गुरुत्व और रसवत्वहै; अर्थात् गुरुत्व और मधुर आदि रस इन्हीं दोनोंमें रहतेहैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और आत्मा इन छओंका लक्षण विशेष गुण वत्वहै; अर्थात् इन्हीं द्रव्योंमें विशेष गुण रहतेहैं॥ अथ गुणनिरूपणं गुणोंका लक्षण द्रव्य वृत्ति नित्यवृत्ति जाति मत्वहै; अर्थात् जो द्रव्यमें नारहै, और नित्यमें रहै, ऐसी जाति जिनमेंरहै, उन्हें गुण कहतेहैं। यद्यपि कर्मत्व जाति द्रव्यमेंनहीं रहती परन्तु नित्यमें भी नहीं रहती क्योंकि कर्म निरूपणमें यह स्पष्ट होगा, कि कर्मनित्य नहीं होता। मिले हुए गुणों

की भिन्न २ कई संज्ञा जो ग्रंथकारोंने बांधीहैं उन्हें लिखता हूं; यथा रूप, रस, स्पर्श गंध, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, गुरुत्व, स्नेह, वेग इन दसों को मूर्त्त गुण कहतेहैं; अर्थात् इन दसों मेंसे कोई एक भी विभुओंमें नहीं रहता यही संख्यादिप- चभिन्नत्वेसति विभ्व वृत्ति गुण त्व इनका लक्षण है। धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, इन दसोंको अमूर्त्त गुण कहते हैं; अर्थात् इन्हों मेंसे कोई एकभी मूर्त्तोंमें नहीं रहता है,। यही संख्यादिप- चभिन्नत्वेसति मूर्त्ता वृत्ति गुणत्व इन दसोंका लक्षण है। संख्या परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, यह पांच मूर्त्ती औरअ मूर्त्तोंके गुणहैं; अर्थात् नवों द्रव्योंमें यही पांच गुण रहते हैं। संयोग, विभाग, द्वित्वआदि संख्यादि पृथक्त्वआ- दि यह गुण अनेकाश्रितहैं; अर्थात् केवल एकमें यह न- हीं रहते; और शेषगुण एक एकमेंही रहते हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, स्नेह, सांसिद्धि कद्रवत्व, धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार, शब्द इन सोल- ह गुणोंको विशेष गुण कहते हैं। संख्या, परिमाण, पृ- थक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, नैमित्तिक द्रवत्व, गुरुत्व, वेगाख्यसंस्कार, इन दसोंको सामान्यगुण कहतेहैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह इन नौ गुणोंका दोदो इंद्रियोंसे अर्थात् चक्षु और त्वक से प्रत्यक्ष होताहै। रूप, रस, गंध, स्पर्श शब्द इ- नका एक एक इंद्रियसे प्रत्यक्ष होताहै; अर्थात् रूपका प्रत्यक्ष केवल चक्षुसेही, रसका प्रत्यक्ष केवल रसना

सेही, गंधका प्रत्यक्ष केवल घ्राणसेही, स्पर्शका प्रत्यक्ष केवलत्वक् सेही और शब्दका प्रत्यक्ष केवल श्रोत्रसेही होताहै ॥ गुरुत्व धर्म, अधर्म भावनाख्य संस्कार ये चारों अतींद्रियहैं; अर्थात् इनका किसी इंद्रियसे प्रत्यक्ष नहीं होता। अपाकजरूप, अपाकजरस, अपाकजगंध, अपाकजस्पर्श, अपाकजद्रवत्व, स्नेह, वेगाख्यसंस्कार, गुरुत्व, एकपृथक्त्व, परिमाण, स्थितिस्थापकसंस्कार, यहग्यारह गुणकारण गुणोद्भवहैं; अर्थात् कारणके गुणोंसेकार्योंमें उत्पन्न होतेहैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार शब्द इन्हें अकारणगुणोत्पन्न कहतेहैं; अर्थात् इनमेंसे कोईगुणभी कारणोंके गुणोंसेकार्योंमें नहीं उत्पन्न होताहै। संयोग विभाग वेगाख्यसंस्कार यह तीनों कर्मजहैं; अर्थात् क्रियासे उत्पन्न होतेहैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श परिमाण, एकपृथक्त्व, स्नेह, शब्द इनमें असमवायिकारणत्व रहताहै; अर्थात् ज्ञानसेभिन्न किसीभावके निमित्तकारण ये नहीं होते। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, धर्म, अधर्म, भावनाख्य संस्कार इनमें निमित्तकारणत्व रहताहै। संयोग, विभाग द्रवत्व, वेगाख्यसंस्कार इनमें दो २ कारणता अर्थात् असमवायिकारणता और निमित्तकारणता रहतीहै। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार, शब्द, संयोग, विभाग ये बारह गुण अव्याप्यवृत्ति हैं; अर्थात् ये जहां रहतेहैं, वहां एक देशमेंही रहतेहैं, आश्रयके संपूर्णदेशोंमें नहीं रहते ॥ रूपका लक्षण चक्षुमा-

अग्राह्यत्वेसति विशेष गुणात्वहै; अर्थात् जिसको चक्षुसे भि न्नकोई बहिरिंद्रिय न ग्रहण करे, और चक्षु जिसे ग्रहणकरे ऐसे विशेष गुणको रूप कहतेहैं। यह रूप जिसमें रहै, चक्षुसे उसीका प्रत्यक्ष होताहै; यह रूप सात संज्ञाओंसे विभक्तहै, यथा शुक्ल, नील, रक्त, पीत, हरित कषाय और चित्र। सातवां चित्र रूप मानने में यह आशंका है; नील, पीत आदि का समुदाय ही चित्र है; इन से अतिरिक्त चित्र कोई नहीं किंतु छहीं रूप कहने चाहिये, सात नहीं कहने चाहिये। उत्तर यह है, पांच रंग के वस्त्र में कौन सा रूप मानोगे; अव्याप्य वृत्ति गुणों में तो रूप नहीं आया; जो एक देश में अन्य और एकदेश में अन्य रूप मानने से निर्वाह हो जावे। यदि तंतुओं में ही पृथक् २ रूप माने वस्तुमें कोई भी रूप नमाने; तो नेत्रोंसे वस्त्र का प्रत्यक्ष नहोना चाहिये। क्योंकि नेत्रों से उसी द्रव्यका प्रत्यक्ष होताहै, जिसमें रूप हो; । इसलिये सातवां रूपचित्र अवश्य मानना पड़ेगा। जलीयपरमाणु, तैजसपरमाणुका रूप नित्य है और सब रूप अनित्यहैं॥ रसका लक्षण रसनेंद्रियग्राह्यत्वेसतिगुणात्वहै; अर्थात् रसनेंद्रियसे जिसका प्रत्यक्ष हो, ऐसे गुणको रसकहतेहैं। यह रस छै संज्ञाओंसे विभक्तहै, यथा मधुर आम्ल, तिक्त, कटु, कषाय, लवण और जलीय परमाणुका रस नित्यहै शेषसारे रस अनित्यहैं॥ गंधका लक्षण घ्राण ग्राह्यत्वे सति गुणात्व है; अर्थात् जिसका घ्राणसे प्रत्यक्षहो ऐसे गुणको गंधकहतेहैं। यह गंधदो संज्ञाओंसे विभक्तहै, सुगंध और दुर्गंध परंतु सभी

गंध अनित्य हैं ॥ स्पर्शका लक्षणत्वङ्मात्रजन्य प्रत्यक्ष विषयत्वेसतिगुणत्व है; अर्थात् जिसेत्वकसेभिन्नकोई इंद्रिय ग्रहण नकरे श्रोरत्वक ग्रहणकरे ऐसे विशेषगुणको स्पर्श कहते हैं। त्वकसे उसी द्रव्यका प्रत्यक्ष होताहै, जिसमें स्पर्श होताहै, यह स्पर्श तीन संज्ञाओंसे विभक्त है, यथा शीत उष्ण, अनुष्णाशीत और जलीयपरमाणु, तैजसपरमाणु, वायवीयपरमाणु में स्पर्शनित्यहै; शेषसबस्पर्श अनित्य हैं ॥ ये चारोंगुण पृथ्वीमें पाकसे उत्पन्न होतेहैं; इसीसे अनित्य होतेहैं, जलआदिमें इनमेंसे जो रहते हैं; वे कहीं नित्य और कहीं अनित्य हैं, परंतु इससे यहभी सिद्ध हुआ, कि पाक पृथ्वीमेंही होताहै; गोतम के मतसे सारी पृथ्वीमें पाक होताहै; और कणादके मतसे केवल परमाणुओंमेंही पाक होताहै। इनकी यह युक्ति है, कि अग्निके संयोगसे सारे अवयवोंमें क्रिया होजाती है; क्रियासे सारे अवयवोंका आपसमें विभाग होके असमवायिकारण संयोगोंका नाश होजाता है; फिर द्व्यणुकतक सारे अवयवियोंका नाश होजानेसे केवल परमाणुही परमाणु रहतेहैं। फिर पकेहुए परमाणु मिलमिल कर सारे अवयवी पक्के बन जातेहैं; इसमें विचार यहहै, कि जिस क्षणमें द्व्यणुक का नाश होताहै; उसक्षणसे लेकर कितने क्षणसे पीछे द्व्यणुक उत्पन्न होकेरूप आदि गुणोंवाला होताहै; यह बालकोंकी बुद्धिदिखानेकेलिये क्रमदिखाया है। इसमें कणाद का यह सिद्धांतसूत्रहै "संयोगविभागयोरनपेक्षकारणकर्म" इसका तात्पर्य यहहै, कि अपने से उत्तर (पीछे)

वर्त्तमान भाव की अपेक्षा छोड़ कर जो संयोग और विभाग का कारण हो, उसे कर्म कहते हैं। इस अर्थ करने से कर्म को उत्तर संयोगके उपजानेमें पहिले संयोगके नाशकी अपेक्षाभी है; तोभी कोई दोष नहीं क्योंकि संयोगका नाश भाव नहीं है; अब जो विभाग जन्य विभाग मानते हैं; उनके मतमें विभाग जब और विभागको उपजावेगा, तो किसी भाव की अपेक्षा लेकर उपजावेगा, नहीं तो विभागभी कर्म ही होजावे, इससे असमवायिकारण संयोगका नाश जिसक्षण में होवे, उसक्षणकी अपेक्षासे जब विभागजन्य विभाग उपजे, तो दशक्षण होते हैं। जैसे अग्निके संयोग से द्व्यणुक के समवायिकारण परमाणुमें क्रिया होती है; उसक्रियासे परमाणुओंको आपसमें विभाग होताहै; फिर असमवायिकारण संयोग का नाश और विभागज विभागकी उत्पत्ति होतीहै; यह पहिला क्षण है, फिर श्यामरूप और पूर्वसंयोगका नाश होताहै; यह दूसरा क्षण है, फिर तीसरे क्षणमें रक्तरूप और उत्तर संयोग उपजताहै; फिर चौथे क्षणमें वह्निके संयोगसे उपजी हुई क्रियाका नाश होताहै; पांचवें क्षणमें अदृष्ट वाले आत्माके संयोगसे परमाणुओंमें द्रव्य उपजाने वाली क्रिया होतीहै; छठे क्षणमें देशके साथ परमाणुका विभाग सातवें क्षणमें देश और परमाणु के संयोगकानाश, आठवें क्षणमें द्व्यणुक के असमवायिकारण संयोगकी उत्पत्ति होतीहै; फिर नौवें क्षणमें द्व्यणुक उपजताहै और दसवें क्षणमें रूपआदिगुण उपजते हैं। यदि द्व्यणुक के नाश क्षणकी अपेक्षासे विभागजन्य विभाग मानाजावे, तो

द्व्यणुक के नाश क्षणसे ग्यारहवें क्षणमें फिर रूपआदि गुण उपजते हैं। जैसे कि अग्निके संयोग से परमाणुओं में क्रिया उपजती है; क्रियासे परमाणुओंका परस्परवि भाग होता है; उस विभागसे आरंभकसंयोग का नाश होता है; फिर द्व्यणुक का नाश होता है; यह पहिला क्षण है, दूसरे क्षणमें विभागजन्य विभाग उपजता है; तीसरे क्षणमें पूर्वसंयोगका नाश, चौथे क्षणमें उत्तर संयोग, पांचवें क्षणमें परमाणु कर्मका नाश, छठे क्षण में अदृष्ट वाले आत्माके संयोगसे द्रव्यके उपजाने वाली क्रिया; सातवें क्षणमें विभाग, फिर आठवें क्षणमें पूर्व संयोगका नाश, नौवें क्षणमें दो परमाणुओंके संयोग होनेसे दसवें क्षणमें द्व्यणुक उपजनेसे ग्यारहवें क्षणमें रक्तरूप आदि गुण उपजते हैं। इसमें कोई ऐसी आशंका करते हैं कि जैसे मध्यम शब्दसे पहिले शब्दका नाश और तीसरे शब्दकी उत्पत्ति होती है; इसी भांति एक वह्निके संयोगसे ही श्यामरूप का नाश और रक्तरूपकी उत्पत्ति क्यों न हो जावे; इसका उत्तर यह है, कि श्यामरूपके नाशसे लेकर रक्तरूपकी उत्पत्ति तक स्थिर एक वह्नि नहीं रह सकती; क्योंकि वह्निका अति वेग बहुत प्रसिद्ध है; और उत्पत्ति का कारण ही यदि नाश का कारण माना जावे, तो रूपके नाशसे अनन्तर आगके बुझजानेमें परमाणु में चिरतक रूप न उपजना चाहिये। और नाशका कारण यदि उत्पत्तिका कारण माना जावे तो रक्तरूपके उपजने पर जब अग्निका नाश होजावे, तो रक्तरूप भी नाश होजाना चाहि-

से। जो विभाग जन्य विभाग नहीं मानते उनके मतमें द्य
णुक के नाशसे लेकर नौक्षणमें रूपआदि गुण उपजते हैं,
जैसे आगके संयोगसे परमाणु में क्रिया उपजती है; उससे
दूसरे परमाणु के साथ विभाग होताहै; फिर असमवा
यिकारण संयोग के नाशसे द्यणुकका नाश होताहै; य
ह पहिला क्षण है, फिर दूसरे क्षणमें परमाणु के श्या
मरूपका नाश, तीसरेक्षण में रक्त आदिगुणों की उत्पत्ति,
चौथे क्षणमें द्रव्यके उपजाने वाली क्रिया, पांचवें क्षणमें
विभाग, छठेक्षणमें पूर्व संयोगका नाश, सातवें क्षणमें
आरंभक संयोग के उपजनेसे आठवें क्षणमें उपादान
द्यणुक उपजके नौवें क्षणमें रूप आदि गुण उपजते हैं।
यहां कोई ऐसी आशंका करते हैं; कि जिस क्षणमें श्या
म रूपका नाश अथवा जिस क्षण में रक्त आदि रूप उप
जते हैं; अर्थात् द्यणुक नाश से दूसरे अथवा तीसरे क्षण
में ही द्रव्य उपजाने वाली क्रिया क्यों नहीं होजावे, तो मा
नो आठही क्षण रूप; नौ क्षण नहीं कहने चाहिये। इ
सका उत्तर यहहै, कि आगके संयोगसे परमाणु में जो प
हिली क्रिया उपजीहै; उसके नाश हुए विना और उससे प
रमाणुमें गुण उपजे विना दूसरी क्रिया नहीं उपज सकती,
क्योंकि ऐसा नहीं होसकता; कि एक क्षणमें एक पुरुष पूर्व
को भी जावे और पश्चिम को भी जावे॥ गुण उपजे विना
भी क्रियाका उपजना सब रीति असंभव है, अच्छा तो भी श्या
मरूप का नाश और रक्तरूप की उत्पत्ति एकही क्षणमें हो
जावे; फिरभी आठही क्षण होंगे, नौ कभी नहीं होते।

इसका उत्तर यह है, कि पहिले रूपका नाश दूसरे रूपका कारण होता है; कारण उसे कहते हैं, जो नियम से पहिले क्षणमें रहे, तो इससे स्पष्ट प्रतीत होताहै; कि पहिले क्षण में श्यामरूपका ध्वंस होगा, क्योंकि कारण है, फिर दूसरे क्षण में रक्तरूप उपजेगा; क्योंकि कार्य है, तो नौक्षण ही सिद्ध हुए। जब विभाग जन्य विभाग नहीं माना और दूसरे परमाणु में क्रिया मानीजावे, तो द्व्यणुक के नाशसे लेकर पांचवें क्षणमें भी रूप आदि गुण उपजते हैं; जैसे पहिले एक परमाणुमें क्रिया हुई, फिर परमाणुओंका आपसमें विभाग हुआ, फिर आरंभक संयोगका नाश और दूसरे परमाणु में क्रिया एकही क्षणमें हुए; फिर द्व्यणुक का नाश और दूसरे परमाणु के कर्मसे विभाग ये दोनों एक क्षणमें उपजे; यह पहिला क्षणहै, दूसरे क्षणमें श्यामरूपका नाश और विभागसे पूर्व संयोगका नाशभी होता है; तीसरे क्षणमें रक्तरूप और असमवायिकारण संयोग उपजते हैं, फिर चौथे क्षणमें द्व्यणुक उपजके पांचवें क्षणमें रक्तरूप आदि गुण उपजते हैं। यदि द्रव्यका नाश और दूसरे परमाणुका कर्म ये दोनों एक क्षणमें माने जावें, तो द्व्यणुक के नाशसे लेकर छठे क्षणमें ही रक्तरूप आदि गुण उपजते हैं; जैसे कि आगके संयोग से एक परमाणु में क्रिया उपजने से दूसरे परमाणुके साथ विभाग होताहै; फिर असमवायि कारण संयोग के नाश से द्व्यणुक का नाश और दूसरे परमाणु में कर्म उपजता है; यह पहिला क्षण है, दूसरे क्षणमें श्यामरूपका नाश और दूसरे परमाणु की क्रियासे

विभाग उपजता है; फिर तीसरे क्षणमें रक्तरूप और दूसरे परमाणु में पूर्व संयोगका नाश उपजता है; चौथे क्षणमें दूसरे परमाणु के साथ संयोग होताहै, पांचवें क्षणमें द्व्यणुक उपजके छठे क्षणमें रक्तरूप आदि गुण उपजते हैं। इसी भांति श्यामरूपका नाश जिस क्षणमें होताहै, उस क्षणमें यदि दूसरे परमाणु में क्रिया मानी जावे; तो द्व्यणुक के नाशसे लेकर सातवें क्षणमें रक्तरूप आदि गुण उपजते हैं; जैसे द्व्यणुक का नाश पिछली कही हुई रीतिसे जब हुआ यह पहिला क्षण है, दूसरे क्षणमें श्यामरूपका नाश और दूसरे परमाणुमें क्रिया उपजती है; तीसरे क्षणमें रक्तरूप और दूसरे परमाणु की क्रियासे विभाग उपजता है; चौथे क्षण में पूर्व संयोग का नाशहोके पांचवें क्षणमें असमवायिकारण संयोग उपजने से छठे क्षण में द्व्यणुक उपज के सातवें क्षणमें रक्तरूपआदि गुण उपजते हैं। इसी भांति जिस क्षण में रक्तरूप उपजता है, उस क्षणमें यदि दूसरे परमाणु में क्रिया मानी जावे, तो द्व्यणुकके नाशसे लेकर आठवें क्षणमें रूपआदि गुण उपजते हैं; ये सब मतोंके भेद केवल बालकोंकी बुद्धि विस्तारने के लिये लिखे हैं॥ संख्याका लक्षण गणन व्यवहार हेतुत्वहै, अर्थात् जिसके द्वारा किसीवस्तु को गिने उस गुणको संख्याकहते हैं; एकत्व से परार्द्धतक संख्या हैं, इनमें एकत्व संख्या नित्योंमें नित्य और अनित्योंमें अनित्यहै और द्वित्वसे परार्द्धतक सारी संख्या अनित्य अपेक्षा बुद्धिसे उत्पन्न होतीहैं; येह द्वित्वआदि संख्या अनेक

आश्रयोंमें रहतीहैं; अपेक्षा बुद्धिके नाशसे द्वित्व आदिका नाश होताहै; और बहुत पदार्थों के अलग २ एक २ गिनने को अपेक्षा बुद्धि कहते हैं ॥ परिमाणका लक्षण मान व्यवहारा साधारण कारणत्व है; अर्थात् जिस गुणके द्वारा किसी वस्तुको मापें उसगुणको परिमाण कहते हैं; यह परिमाण नित्यमेंनित्य और अनित्यमें अनित्य होताहै; परन्तु विना आश्रय नाश के परिमाणका नाश नहीं होता। यह परिमाण चारसंज्ञाओंसे विभक्त है, जैसे अणु, दीर्घ, महत्, ह्रस्व, अर्थात् छोटा, लंबा, भारी हलका। परिमाणकेतीन कारण हैं; जैसे संख्या, प्रचय, परिमाण, परमाणुओंकी द्वित्वसंख्यासे द्व्यणुकका परिमाण उत्पन्न होताहै; द्व्यणुकोंकी त्रित्वसंख्यासे त्र्यणुकका परिमाण उत्पन्न होताहै; क्योंकि परमाणुका परिमाण और द्व्यणुक का परिमाण किसीका कारण नहीं है; शिथिलसंयोगको प्रचय कहतेहैं; थोड़ी रूईको जब धुनियां धुनता है; तो वह रूई फूलके बड़ी होजाती है; यह बड़ा परिमाण प्रचय नामी शिथिल संयोगसे उत्पन्न होताहै। अवयवोंके परिमाण से जो अवयवीका परिमाण उत्पन्न होताहै; उसका कारण परिमाण है, जैसे कपालोंके परिमाण से घटका परिमाण उत्पन्न होताहै, और तन्तुओंके परिमाणोंसे पट का परिमाण उत्पन्न होताहै ॥ पृथक्त्वका लक्षण पृथग्व्यवहारासाधारण कारणत्वहै; अर्थात् यह पदार्थ इस पदार्थसे पृथक् है, यह बात जिसगुणसे जानीजातीहै; उसे पृथक्त्व कहते हैं। यद्यपि भेद औरपृथक्त्व एकही प्रतीत होतेहैं; तो भी य

ह घट नहीं है, यह भेदकी प्रतीति है, और यह घटसे पृथक्
है, यह पृथक्त्वकी प्रतीति है, इन प्रतीतिओंके भेदसे पृथक्त्व
नामी गुण मानते हैं। एक द्रव्यसे दूसरे द्रव्यको जैसे पृथ-
क करलेते हैं, इस भांति गुणोंको नहीं पृथक करसकते,
परंतु भेद गुणोंका भी सिद्ध होसकता है; कि रूप जो है,
वह रस नहीं है, इन युक्तिओंसे पृथक्त्व नामी गुण अभाव
नहीं है, ॥ संयोगका लक्षण अप्राप्ति पूर्वक प्राप्तित्व है;
अर्थात् अप्राप्त पदार्थों (विना मिले पदार्थों) की प्राप्तिको
(मिलनेको) संयोग कहते हैं; यह संयोग तीन संज्ञाओंसे वि
भक्त है, जैसे अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज, संयोगज। अर्था
त् संयोग दो पदार्थोंका होता है, जहां दोमेंसे एकको क्रिया
हो, दूसरेको क्रिया नहो, वहां अन्यतरकर्मज संयोग होता
है; जैसे पर्वतसे पक्षीका संयोग होता है; यहां पक्षीकी क्रि
यासे संयोग हुआ है, पर्वतमें क्रिया नहीं हुई। जो दोनोंकी
क्रियासे प्राप्ति उत्पन्न हो; उसे उभयकर्मज संयोग कहते हैं,
जैसे दो मल्लोंका संयोग है, क्योंकि यहां दोनों क्रिया करते हैं।
और एकदेशके संयोगसे जो सारे पदार्थका संयोग हो,
उसे संयोगज संयोग कहते होते हैं; जैसे एक अंगुलीके सा
थ पुस्तकका संयोग होनेसे जो सारे शरीरका पुस्तकसे सं
योग होता है; क्योंकि एकदेश समुदायसे भिन्न है। अन्यतर
कर्मज, उभयकर्मज ये दोनों प्रत्येक दो दो प्रकारके हैं।
जैसे अभिघात, नोदन अर्थात् जिस संयोगसे शब्द उत्पन्न
हो; उसे अभिघात और जिससे शब्द न उत्पन्न हो, उसे नोदन
कहते हैं ॥ विभागका लक्षण संयोग नाशकत्वे सति गु-

गत्व है, अर्थात् मिले हुए दो पदार्थोंका अलग २ होना विभाग कहाता है; यह विभाग भी तीन संज्ञाओंसे विभक्त है; जैसे अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज, विभागज। अर्थात् विभाग भी संयुक्त दो पदार्थोंका है; तो जो एककी क्रिया से विभाग उत्पन्न हो; उसे अन्यतरकर्मज कहते हैं, जैसे पक्षीका पर्वतसे विभाग, यहां केवल पक्षीकी क्रियाही कारण है; जो दोनोंकी क्रियासे विभाग उत्पन्न हो; उसे उभयकर्मज विभागकहते हैं, जैसे दो पक्षी लड़ते २ गुच्छाहुए २ अलग २ होजाते हैं, यहां दोनों पक्षी क्रिया करतेहैं। एक देशके विभागसे जो सारे पदार्थका विभाग होताहै; उसे विभागज विभाग कहते हैं, जैसे पुस्तकसे छुई हुई अंगुलीके अलग करनेसे सारा शरीर भी अलग होजाताहै। यह विभागजविभागभी दो प्रकारका है, जैसे हेतुमात्र विभागोत्थ, हेत्व हेतु विभागज अर्थात् कपालोंके परस्पर विभागसे जो अन्यदेशके साथ कपालोंका विभाग, उसे हेतु मात्र विभागोत्थ कहतेहैं और कपालोंके विभागसे जो घटका भूतलसे विभाग हो, उसे हेत्व हेतु विभागज कहतेहैं॥ परत्व, अपरत्व दोदो प्रकारके हैं, एक दैशिक परत्व अपरत्व अर्थात् दूरत्व, समीपत्व और कालिक परत्व अपरत्व अर्थात् ज्येष्ठत्व, कनिष्ठत्व। ये दो प्रकारके परत्व वा अपरत्व अपेक्षासे विना कहीं नहीं होते; दैशिकपरत्वका लक्षण मूर्त्तसंयोगाधिक्य ज्ञानजन्यत्व है, अर्थात् जो वस्तु जिस वस्तुकी अपेक्षा अधिक देशलंघके स्थितहो; वह वस्तु उस वस्तुसे पर कहाती है, जैसे लवणके [illegible]ओंसे

जालंधर अम्रतसरकी अपेक्षा अधिक देशके अंतरमें स्थित है, इसलिये लवपुरके मनुष्योंको अम्रतसरसे जालंधर परहै। दैशिक अपरत्वका लक्षण मूर्तसंयोगाल्पत्व ज्ञानजन्यगुणत्व है; अर्थात् जिसवस्तुकी अपेक्षा जिस वस्तुमें थोड़े देशका अंतर हो; उस वस्तुसे वह अपर कहाती है; जैसे उक्त उदाहरणमें जालंधर की अपेक्षा अम्रतसरमें थोड़े देशका अंतरहै; इसलिये लवपुरके लोगोंको जालंधरकी अपेक्षा अम्रतसर अपर (समीप) है। कालिक परत्वका लक्षण सूर्य क्रियासंबंधाधिक्य ज्ञानजन्यत्व है; अर्थात् जिसकी अपेक्षा जो पदार्थ बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआहो; उसकी अपेक्षा वह पदार्थ पर ज्येष्ठ (बड़ा) कहाताहै; जैसे पुत्रकी अपेक्षा पिता बहुत दिनोंसे उत्पन्नहुआ होताहै; इसलिये पुत्रसे पिता बड़ा होताहै। कालिक अपरत्वका लक्षण सूर्यक्रिया संबंधाल्पत्वज्ञानजन्यत्वहै; अर्थात् जोवस्तु जिससेपीछे उत्पन्न हो; वह वस्तु उससे कनिष्ठ छोटी कहातीहै; जैसे उक्त उदाहरणमें पुत्र पितासे पीछे उत्पन्न होताहै; इसलिये पितासे पुत्रकनिष्ठ (छोटा) होताहै॥ किसी पदार्थके जानने को बुद्धि कहतेहैं; यह बुद्धि दो प्रकारकी है, अनुभव, स्मरण। इन्द्रियोंसे वा किसी युक्तिसे वा सादृश्यसे वा पदोंके समूहसे पदार्थका जानना अनुभव कहाताहै; अर्थात् जोज्ञान स्मृति से भिन्न हो, और विशेषण विशेष्यआदि को जनावे; उसे अनुभव कहते हैं। जाने हुए पदार्थकी बहुत हर बेरकार मनमें कल्पना करनी यह स्मरण कहाताहै। परन्तु अनुभव वा स-

रण विना विशेषण विशेष्य और संबंधके कभी नहीं होते। जिस ज्ञानमें विशेषण विशेष्य और संबंध कोई नाहो; उसे निर्विकल्पक कहते हैं; अनुभव चारसंज्ञाओंसे विभक्त है, जैसे प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्दबोध। प्रत्यक्षका लक्षण इंद्रियजन्य ज्ञानत्व है; अर्थात इंद्रियोंके द्वारा पदार्थोंका जानना प्रत्यक्ष कहाताहै, परंतु सिद्धांत यहहै, कि जिस में ज्ञान नहीं करण हो, ऐसे ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं। यह प्रत्यक्ष दो प्रकारकाहै, लौकिक और अलौकिक। इनमेंसे लौकिक संबंधसे जो प्रत्यक्ष होताहै; उसे लौकिक प्रत्यक्ष और अलौकिक संबंधसे जो प्रत्यक्षहो; उसे अलौकिक प्रत्यक्ष कहते हैं। लौकिक प्रत्यक्ष छः प्रकारका है, यथा घ्राणज, रासन, चाक्षुष, त्वाच, श्रौत्र और मानस। घ्राणेंद्रियसे पदार्थोंके जाननेको घ्राणज प्रत्यक्ष कहते हैं; घ्राणसे स्थूलगंध, गंधत्व जाति, गंधाभाव (गंधका न होना) सुरभित्व, असुरभित्व इतने पदार्थ जानेजाते हैं; परन्तु सूक्ष्मगंध (परमाणु-केगंध) को हम लोगोंका घ्राण ग्रहण नहीं करसकता, इसलिये सूक्ष्मगंधका अलौकिक प्रत्यक्ष हो, भी लौकिक नहीं होसकता। यह प्रत्यक्षसे मालूम होताहै, कि जिस इंद्रियसे जो २ पदार्थ जानेजाते हैं; उन पदार्थोंके धर्म और उन पदार्थोंका होना नाहोना भी उसी इंद्रिय से जानाजाताहै। रसनासे पदार्थोंके जाननेको रासन प्रत्यक्ष कहते हैं; स्थूलरस, रसत्व, रसाभाव (रसका नाहोना) मधुरत्व आदि इन पदार्थोंको रसना ग्रहण करतीहै। चक्षुसे प-

द्रव्योंके जानने को चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं; स्थूलरूप, रूप त्वजाति रूपभाव, स्थूलरूप जिनमें रहे वे द्रव्य और ऐसे द्रव्यों में रहने हारे पृथक्त्व, संख्या, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, स्नेह, द्रवत्व, परिमाण, क्रिया, जाति समवाय इतने पदार्थोंको आलोक (प्रकाश) और स्थूलरूपके संबंधसे चक्षु ग्रहण करते हैं। त्वक्से पदार्थोंके जाननेको त्वाच प्रत्यक्ष कहते हैं; स्थूलस्पर्श, स्थूलस्पर्श जिनमें रहे वे द्रव्य, स्पर्शत्व स्पर्शाभाव, शीतत्व, उष्णत्व, और स्थूलद्रव्योंमें रहने वाले (पृथक्त्व, संख्या, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, स्नेह, द्रवत्व, परिमाण, क्रिया, जाति, समवाय) इन पदार्थोंको त्वक् ग्रहण करती है। श्रोत्र (कान) से पदार्थोंके जानने को श्रोत्र प्रत्यक्ष कहते हैं; शब्द, शब्दत्व, शब्दाभाव (शब्दका न होना) ये पदार्थ श्रोत्र (कान) से जानेजाते हैं। मनसे पदार्थोंके जानने को मानस प्रत्यक्ष कहते हैं; सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, बुद्धि (सविकल्पकज्ञान) यत्न इतने पदार्थ मनसे जानेजाते हैं। निर्विकल्पक ज्ञानका प्रत्यक्षही नहीं होता; इन छहे प्रत्यक्षोंमें महत्व (महत्परिमाण) कारण है, इंद्रियकरण हैं, विषयोंके साथ इंद्रियोंका संबंधव्यापार है। द्रव्यका उसीका प्रत्यक्ष होताहै, जिसमें समवाय संबंधकरके महत्परिमाण रहे। गुण वा कर्मका उसीका प्रत्यक्ष होताहै; जिसमें समवायि समवेतत्वसंबंधसे महत्परिमाण रहे, उसीजातिका प्रत्यक्ष होताहै; जिसमें स्वसमवायि समवेत समवेतत्व संबंधसे महत्परिमाणरहे। इसी रीति द्रव्यआदि पदार्थों के प्रत्यक्ष में इन्हीं संबंधो से आलोक संयोग और उद्भूत (प्रगट) रूपभी का

रण जानने। लौकिक प्रत्यक्ष में व्यापार (विषयों के साथ इंद्रियों के लौकिक संबंध) भी छे प्रकार के हैं; यथा द्रव्यों के प्रत्यक्ष में इंद्रियसंयोग (१) द्रव्यों में समवाय संबंध से वर्तमान गुणआदि पदार्थों के प्रत्यक्ष में इंद्रियसंयुक्तसमवाय (२) द्रव्यों में समवायसंबंधसे रहने वालेगुण आदि कों में समवाय संबंध से वर्तमान गुणत्व आदि जातियों के प्रत्यक्ष में इंद्रियसंयुक्तसमवेतसमवाय (३) शब्द के प्रत्यक्ष में श्रोत्र समवाय (४) शब्द में समवाय संबंध से वर्तमान शब्दत्व आदि के प्रत्यक्ष में श्रोत्रसमवेतसमवाय (५) समवाय और अभाव के प्रत्यक्ष में विशेषणता संबंध (६) व्यापार है। मीमांसकों ने अभाव के प्रत्यक्ष में प्रतियोगी की अनुपलब्धि (प्रत्यक्ष न होना) नाम से पृथक् प्रमाण माना है; जैसे यदि यहां घट हो तो भूतल की नाईं दीख पड़े ऐसा जहां कहें, वहां प्रतियोगी (घट) का प्रत्यक्ष न होने से घटाभाव का प्रत्यक्ष होता है। परंतु घट का प्रत्यक्ष जब चक्षु से होता है, तो घटाभाव का प्रत्यक्ष भी चक्षु से ही होगा; प्रतियोगी की अनुपलब्धि सहायक हो भी प्रत्यक्ष आदि से अतिरिक्त पांचवां प्रमाण मानना सर्वथा युक्ति से बाहर है। अलौकिक व्यापारों के तीन भेद होने से अलौकिक प्रत्यक्ष भी तीन प्रकारका जानना; यथा सामान्यलक्षण, ज्ञानलक्षण २ और योगजलक्षण ३ इन तीनों में से जाति (साधारणधर्म) का ज्ञान सामान्यलक्षण कहाता है। इस व्यापार से जाति के सारे आश्रयों (व्यक्तियों) का अलौकिक प्रत्यक्ष होता है; जैसे यह पट तंतुओं से बना है, किसी

एक पट में ऐसा निश्चय कर के पटत्व जाति के संबंध से जा
नना कि सारे पट तंतुओं से बने हैं; सारे पटों का यह अलौकि
क प्रत्यक्ष सामान्यलक्षणा से होता है। यद्यपि सामान्यल
क्षणा और ज्ञानलक्षणा दोनों बुद्धि स्वरूप ही हैं; तोभी यह
भेद जानना, सामान्यलक्षणा में जाति के ज्ञानसे व्यक्तियों
का और ज्ञानलक्षणा में जाति के ज्ञान से जाति का प्रत्यक्ष हो
ता है। योगाभ्यास से दो सामर्थ्य पुरुष में उपजतीं हैं; उन्हीं
से युक्त और युंजान नाम के दो भेद योगियों के होते हैं। समा
धि आदि के यत्न से विना सारे पदार्थों का प्रत्यक्ष जिन्हें स्वभा
व से ही हो; वे युक्त और समाधि के द्वारा वांछित पदार्थों का
प्रत्यक्ष जिन्हें हो; वे युंजान कहाते हैं॥ नियम से इकट्ठे रह
ने वाले एक पदार्थ के जानने से दूसरे पदार्थ के जानने को
अनुमिति कहते हैं; अनुमिति का करण व्याप्तिज्ञान है, जिसे
अनुमान भी कहते हैं, और अनुमिति में परामर्श व्यापार
होता है; जिस एक वस्तु के जानने से दूसरी वस्तु जानी जा
य उस एक वस्तु को हेतु और दूसरी वस्तु को साध्य कहते
हैं; और जिस स्थान में साध्य का जानना अभीष्ट हो, उसे
पक्ष कहते हैं, जहां हेतु को देखके साध्य का निश्चय किया
हो, उसे दृष्टांत कहते हैं; अनुमिति की रचना में पक्ष, साध्य,
हेतु दृष्टांत इन चारों का मानना आवश्यक होता है। कई
आचार्य्य अनुमिति में हेतु को करण मानते हैं, परन्तु सिद्धा
न्त में व्याप्तिज्ञान ही करण है; क्योंकि "इस यज्ञ के घर में आ
ग है, जिससे प्रातःकाल यहां धूम बहुत हुआ था" इस अनु
मान में यज्ञशाला पक्ष, आग साध्य और धूम हेतु है तो प

मही कारण हुआ, परन्तु अनुमितिके समय कारण (धूम) नष्ट होचुका और कारणके विना कभी कार्य्य नहीं उत्पन्न हो ता तो अनुमिति यहां नहोनी चाहिये; इसलिये अनुमितिमें व्याप्तिज्ञान ही कारण है, हेतु नहीं कारण है. और एक निय मको व्याप्ति कहते हैं जैसा साध्यका एक विशेष संबंध हेतुमें रहने वाला व्याप्तिकहाताहै "साध्याभाववद वृत्तित्वम्" अर्थात् साध्यशून्यदेशमें हेतुका नरहना व्याप्ति कहाताहै जैसे घटो रूपवान् गंधवत्वात्पुष्पवत् इस अनुमानमें घट पक्षहै, क्योंकि घटमें रूपको जानताहै, और जानना चाहते हैं, सिद्धांतमें रूपको इसलिये रूपसाध्य हुआ, परन्तु गंध के जाननेसे रूपका ज्ञान हुआ, इसलिये गंधहेतु है, और "गंध जहां होगा वहां रूप अवश्य होगा" यह निश्चय हमें पु ष्प में हुआहै; इसलिये पुष्प दृष्टान्तहै, रूप शून्य आकाश आदि में गंध नहीं रहता इस मे गंध सद्धेतु (प्रमाणहेतु) है; अर्थात् व्याप्ति सद्धेतु (प्रमाणहेतु) का लक्षणहै। व्या प्तिनामी नियमके दो भेदहैं, अन्वयव्याप्ति, व्यतिरेक व्याप्ति इ न्हीं दो भेदोंसे अनुमान तीन भेदका होता; जैसाकि (१) केवलान्वयी अर्थात् जिसमें केवल अन्वय नियमही लगे औ र व्यतिरेक नियम नलगावे। (२) केवलव्यतिरेकी अ र्थात् जिसमें केवलव्यतिरेक नियमही संगतहो, और अन्व य नियमसंगति नखावे। (३) अन्वयव्यतिरेकी अर्थात् जि समें अन्वयनियम और व्यतिरेक नियम दोनोंसंगत होजावें। अन्वय नियम यहहै, जिस २ स्थानमें हेतु रहे उन सं[illegible] स्थानोंमें साध्य अवश्य रहना चाहिये ऐसा कभी नहो

कि साध्य जहां नरहे वहांभी कहीं हेतु रहजावे। इसी नियम
से साध्य शून्या वृत्तित्व व्याप्ति कही है, उक्त अनुमानमें साध्य रू-
प है, और रूप शून्य आकाश आदिमें गंधनहीं रहता इसीसे
सद्धेतु है। इस अनुमानको यदि उलटाके साध्यको हेतु औ-
र हेतु को साध्यकर दें, अर्थात् घटोगंधवान् रूपात्पृथ्वीवत्
तो सद्धेतु कभी नहोगा, क्योंकि साध्य गंध है, और गंधशून्य
जलादिकमें रूप रहताहै; इसलिये जहां २ रूपरहा उन सारे
स्थानोंमें गंधनहीं रहा ऐसे २ दुष्ट अनुमानोंको व्यभिचारी
कहतेहैं। परन्तु साध्याभाववदवृत्तित्व यह नियम केवला-
न्वयिमें नहीं चलता; जैसाकि घटोवाच्य प्रमेयत्वात्पटवत्
इस अनुमानमें घट पक्षहै, वाच्यत्व साध्य है, प्रमेयत्व हेतु है,
और पट दृष्टांतहै, परन्तु वाच्यत्व सारे पदार्थोंमें रहताहै, इस-
लिये वाच्यत्व शून्य पदार्थ अप्रसिद्ध हुआ, अव्याप्ति लगी।
इसलिये हेत्वधिकरण वृत्त्यभावा प्रतियोगिसाध्याधिकर-
ण वृत्तित्वं यह अन्वय नियम बांधाहै; इसका समन्वय करने
के अर्थ कुछ उपयोगी नियम लिखते हैं। (१) जिस पदार्थ
का अभाव हो वह पदार्थ उस अभावका प्रतियोगी कहाता
है; जैसाकि घट शून्य देशमें जो घटाभाव रहताहै; उसका
प्रतियोगी घट है, (२) अत्यन्ताभावका प्रतियोगिसे विरोध-
है, अर्थात् जहां प्रतियोगी रहे वहां अभाव कभी नहीं रहेगा
और जहां अभाव रहे वहां प्रतियोगी कभी नहीं रहता। (३)
अन्यूनानतिरिक्त वृत्तिधर्मको अवच्छेदक कहतेहैं; अर्थात्
जो धर्म अधिक देशमें भी न रहे, और न्यून देशमें भी न रहे किं-
तु तुल्य देशमें रहे, उसे अवच्छेदक कहेंगे। जैसा घटाभाव-

के प्रतियोगी घटमें जो प्रतियोगिताहै; इसका अवच्छेदक बिना घटत्वके और कोई नहीं बनसकता; क्योंकि यह प्रतियोगिता तो सारे घटोंमेंही रहेगी; पृथ्वीत्व वा द्रव्यत्व आदि अधिक देशमें रहगए और तद्घटत्व उसी घटमें रहनेसे न्यून देशमें रहगया; किंतु घटत्व धर्मही प्रतियोगिताके साथ तुल्य देशमें रहेगा, तो वही अवच्छेदक हुआ (४) अन्योन्याभाव (भेद) का प्रतियोगितावच्छेदकके साथ विरोध है, जैसा घटभेदका प्रतियोगी घट है, इस प्रतियोगीमें प्रतियोगितावही, इस प्रतियोगिताके साथ तुल्यदेशमें रहने वाला घटत्व इस प्रतियोगिता का अवच्छेदक हुआ; तो इस घटत्व के साथ घटभेदका विरोधहै; अर्थात् ये दोनो एक स्थानमें कहीं कहीं नहीं रहतेहैं। और उपयोगीनियम जहां अपेक्षित होंगे, वहांही दिखावेंगे, अब पूर्वोक्त लक्षणका समन्वय करके लिखते हैं, यथा हेतुके आश्रयमें जिसका अभाव न रहे ऐसे साध्यके साथ हेतुका एक अधिकरणमें रहना व्याप्ति कहाता है। इदंवाच्यं प्रमेयत्वाद्घटवत् इस अनुमानमें हेतु प्रमेयत्वहै, और प्रमेयत्वका आश्रय सारा जगत् है; जगतमें घट पट आदि सारे पदार्थोंका अभाव रहता है; किंतु वाच्यत्वका अभाव कहीं नहीं क्योंकि वाच्यत्वसारे जगतमें रहताहै; ऐसे साध्य वाच्यत्वके साथ प्रमेयत्व हेतु सारे जगतमें रहताहै, इससे सद्धेतु है। पर्वतो वह्निमान्धूमात् महानसवत् इस अनुमानमें हेतु धूमहै, धूमके आश्रय पर्वत आदि हैं, पर्वत आदिकोंमें वह्नि रहताहै, इसलिये वह्निका अभाव इनमें कभी नहीं रहेगा, ऐसे वह्निके साथ धूम हेतु पर्वत

आदि आश्रयोंमें रहताहै; इससे सद्धेतु है। और पर्वतो धूम वान्वह्नेः महानसवत् ऐसे ऐसे व्यभिचारी अनुमानोंमें यह लक्षण कभी नहीं संगति खाताहै; जैसा कि उक्त व्यभिचारी में हेतु वह्नि है; और वह्निके आश्रय लोह पिंडमें धूम नहीं रहता; किन्तु धूमाभाव रहताहै, इसलिये धूम साध्य ऐसा न हुआ, कि जिसका अभाव हेतुके किसी आश्रयमें न रहे, तो इससे यह अनुमान व्यभिचारीहै। इसी लक्षणकी घटो गंधवान् पृथिवीत्वात्पटवत् इत्यादि अनुमानोंमें अव्याप्ति लगाती है; जैसे हेतु पृथिवीत्वहै, पृथिवीत्वके अधिकरण पृथिवीमें गंधका अभाव दो रीतिसे पासकते हैं; एक तो य ह कि सारे अनित्य द्रव्य उत्पत्तिक्षणमें निर्गुण होतेहैं, इसलि ये अनित्य पृथिवीमें उत्पत्तिके समय सारे गुणोंका अभाव रहनेसे गंधका अभाव सहजसेही रहगया। दूसरे यह कि एक पृथिवीमें दूसरे गंधका अभाव और दूसरी पृथिवी में तीसरे गंधका अभाव इसरीति सारे गंधोंका अभाव पृथि वीमें रहगया। इसीरीतिको चालिनी न्यायभी कहते हैं; तो गंधसाध्य ऐसा नहुआ, कि जिसका अभाव पृथिवीमें न रहे। इस अव्याप्ति वारणके अर्थ लक्षणका कुछ अर्थ उलट देतेहैं; कि हेत्वधिकरण वृत्यभाव प्रतियोगिता नवच्छेदक साध्यता वच्छेदका वच्छिन्न सामानाधिकरण्यम् अर्थात् हेतुके अधिकरणमें रहने वाले अभावका जो प्रतियोगि ता वच्छेदक इससे भिन्न जो साध्यतावच्छेदक तदवच्छि न्नाधिकरणमें हेतुका रहना व्याप्ति कहाताहै। उक्त अनु मानमें हेतु पृथिवीत्वहै पृथिवीत्वाधिकरण पृथ्वीमें त-

त्पत गंधाभाव जो धरते हैं; उसकी प्रतियोगिता तत्तत् गंधमें स
ही इस प्रतियोगिताके साथ तुल्य देशमें रहने वाला धर्म गंध
त्व नहीं होसकता; क्योंकि गंधत्व सारे गंधोंमें रहता है, और
तत्तत् गंधा भावीय प्रतियोगिता केवल एक २ गंधमें रहती
है। किन्तु इनप्रतियोगिताओंके साथ तुल्य देशमें रहने वा
ले तत्तत् व्यक्तित्व धर्म होंगे; वेही अवच्छेदकरूप, इन अव
च्छेदकोंसे भिन्न साध्यतावच्छेदक गंधत्व हुआ, तद वच्छि
न्नाधिकरण पृथिवीमें पृथिवीत्व रहता है, इससे सद्धेतु है,
अव्याप्तिका वारण हुआ। परन्तु पृथिवीमें उत्पत्ति समय
जो गंध सामान्या भाव पाया, उसका प्रतियोगिता वच्छेद
क गंधत्व हुआ, इस अव्याप्तिको हटाने वास्ते अभावमें प्रति
योगिव्यधिकरणत्व विशेषण दिया है; अर्थात हेत्वधिकर
णमें रहने वाला अभाव कैसा चाहिये कि जो अपने प्रतियो
गीके अधिकरणमें न रहे। उत्पत्तिके समय जो गंधाभाव पृ
थिवीमें रहता है; वह अभाव अपने प्रतियोगी गंधके अ
धिकरणमेंही रहता है; किंतु ऐसा अभाव गगनाभाव इ
सका प्रतियोगिता वच्छेदक गगनत्व हुआ, गगनत्वसे
भिन्न साध्यता वच्छेदक गंधत्व हुआ, और गंधत्वा वच्छि
न्नाधिकरण पृथिवीमें पृथिवीत्व रहगया इससे सद्धेतु हुआ,
अव्याप्तिका वारण हुआ। तो लक्षण यह बना कि प्रतियोगि
व्यधिकरण हेत्वधिकरण वृत्त्यभाव प्रतियोगिता नवच्छे
दक साध्यता वच्छेदका वच्छिन्न सामानाधिकरण्य। इस
लक्षणमें प्रतियोगिव्यधिकरणत्व विशेषण जो अभावमें
दिया है; उसके दो अर्थ होते हैं, एक तो यह कि प्रतियोग्य

धिकरण वृत्तित्व अर्थात् जो अभाव अपने प्रतियोगी के अधिकरणमें न रहे, उसे प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव कहेंगे। दूसरा प्रतियोग्यनधिकरण वृत्तित्व अर्थात् जो अभाव प्रतियोगी शून्यदेशमें रहे, उसे प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव कहते हैं। इनमेंसे पहिला अर्थ ग्रहण करें तो "वृक्षः कपिसंयोगीसत्वात् घटवत्" इस व्यभिचारी अनुमानमें अतिव्याप्ति लगेगी; क्योंकि सभी व्यभिचारियोंमें अतिव्याप्तिवारणके वास्ते प्रायः साध्यसामान्याभावही धरते हैं, परन्तु उक्त व्यभिचारीमें साध्यकपिसंयोग है; और साध्याभाव कपिसंयोगाभाव हुआ, यह कपिसंयोगाभाव प्रतियोग्यधिकरण वृत्ति नहीं है; क्योंकि कपिसंयोगाभावका प्रतियोगी कपिसंयोग है, इसके अधिकरण वृक्षमें कपिसंयोगाभाव रह गया; जिससे सारे संयोग अव्याप्य वृत्ति होते हैं। अर्थात् ऐसा संयोग कोई नहीं होता, कि जो संयोगी पदार्थोंके सारे अवयवोंमें रहे, कोई ना कोई अवयव खाली रहही जावेगा, किंतु जो प्रतियोगीके अधिकरणमें न रहे, ऐसा अभाव द्रव्यत्वा भाव हुआ, इसका प्रतियोगिता वच्छेदक द्रव्यत्वत्व है, द्रव्यत्वत्वसे भिन्न साध्यतावच्छेदक कपि संयोगत्व हुआ, तदवच्छिन्नाधिकरण वृक्षमें सत्ता हेतु रहगया, अतिव्याप्ति लगी। इससे पहिला अर्थतो दुष्ट हुआ, और दूसरा अर्थ ग्रहण करें तो उक्त अनुमान (घटो गंधवान् पृथिवीत्वात् पटवत्) में अव्याप्ति लगीही रहेगी; क्योंकि गंधाभाव जो उत्पत्तिके समय पृथिवीमें रहता है; वह प्रतियोग्यनधिकरण वृत्तिभी होगया; अर्थात् गंधाभावका प्रतियोगी जो गंध है,

इससे मूर्त्तगुण आदिमें गंधाभाव रहगया, गंधाभावका प्रतियोगितावच्छेदक गंधत्वहै; अनवच्छेदक साध्यतावच्छेदक नहुआ, अव्याप्तिलगी। इससे प्रतियोगिअधिकरण हेतु समानाधिकरण अभाव यहांतक मिलाके एक अर्थ करना, अर्थात् जिस अभावका प्रतियोगी हेतुके अधिकरणमें नरहे उसे प्रतियोगिअधिकरण हेतु समानाधिकरण अभावकहतेहैं। सोसारालक्षण मिलाके ऐसा हुआ, कि जिस अभावका प्रतियोगी हेतुअधिकरणमें न रहे, उस अभावके प्रतियोगितावच्छेदक से भिन्न जो साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्नाधिकरणमें हेतुका रहना व्याप्ति कहाताहै। उक्त व्यभिचारी (द्रव्यं कपिसंयोगीसत्वात् घटवत्) में सताधिकरण गुण वा कर्म में कपि संयोगाभावका प्रतियोगी कपिसंयोग नहीं रहता जिससेगुण आदि पदार्थ निर्गुण होतेहैं; ऐसा अभाव कपिसंयोगाभाव हुआ, कपिसंयोगाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कपिसंयोगत्वहै, वही साध्यतावच्छेदक है, अनवच्छेदक साध्यतावच्छेदक नहुआ, मानो अतिव्याप्ति हटगई। और पृथ्वी रूपवान् गंधवत्वात् घटवत् इस अनुमानमें हेतु गंधहै; और ऐसागंधका अधिकरणकोई नहीं कि जिसमें रूप नरहे; इससे रूपाभावनधरसके; किंतु गुणत्वाभाव ऐसाहै, कि जिसका प्रतियोगी गुणत्व रूपके अधिकरणमें कहीं नहीं रहता; गुणत्वाभावका प्रतियोगितावच्छेदक गुणत्वत्वहै, गुणत्वत्वसे भिन्न साध्यतावच्छेदक रूपत्वहै, तदवच्छिन्नाधिकरण पृथिवीमें गंध रहगया मानो

अव्याप्ति रहगई। इसलक्षणकी घटोगुणकर्मान्यत्व विशि
ष्टसत्तावान् जातेःपरवत इसव्यभिचारी अनुमानमें अतिव्या
प्ति लगती है; यथा जाति हेतुका कोई ऐसा आश्रय नहीं कि
जिसमें गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभावका प्रतियोगी न रहे,
क्योंकि द्रव्यगुण, कर्म इन तीनोंमें ही जाति रहती है; और गु
ण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभावका प्रतियोगी गुणकर्मान्य
त्व विशिष्टसत्ता है; परन्तु विशिष्ट और शुद्ध एकही होते हैं;
क्योंकि विशेषणोंके भेदसे विशेष्य भिन्न २ नहीं होजाता,
जैसा कि रामचंद्र पढ़ता है, इसवाक्यमें पढ़ना रामचंद्र का
विशेषण है; तो जब रामचंद्र सभामें बैठा है, अर्थात् पढ़ता
नहीं है, उस समय पढ़ने वाले रामचंद्रसे सभामें बैठने वाला
रामचंद्र जुदा नहीं किंतु वही है। इसी भांति गुणकर्म भेद
विशिष्ट सत्ता और सत्ता एकही है, तो गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट
सत्ताभावका प्रतियोगी सत्ता हुई; यह सत्ता द्रव्यगुण कर्म
तीनोंमें रहती है, इससे गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्ताभाव न
धरसके किंतु गुणत्वाभाव आदि ऐसे होंगे, कि जिनके प्र
तियोगी गुणत्व आदि जातिके आश्रय द्रव्य वा कर्ममें नहीं
रहते हैं। गुणत्वाभाव का प्रतियोगितावच्छेदक गुणत्वत्व है
गुणत्वत्वसे भिन्न साध्यतावच्छेदक गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट
सत्तात्व है; तदवच्छिन्नाधिकरण द्रव्यआदिमें जाति हेतु र
हगया तो मानो अति व्याप्ति लगी। इसवास्ते प्रतियोगि व्य
धिकरण हेतु समानाधिकरण अभाव इतने अक्षरोंका
अर्थ उलटा कर इसभांति करतेहैं। कि हेतुका अधिकरण
जिस अभावके प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरण

से भिन्न हो, उस अभावको प्रतियोगिव्यधिकरण हेतु समानाधिकरण अभाव कहते हैं। उक्त व्यभिचारीमें अतिव्याप्ति अब हटगई; यथा जाति हेतुका अधिकरण गुणवा कर्म विशिष्टसत्ताभावके प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणसे भिन्न है; क्योंकि सत्ता और विशिष्टसत्ता चाहे एकही है तो भी सत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणता और गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणता भिन्न २ है, जिससे सत्तावान्गुणः यह प्रतीति होती है, और गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तावान्गुणः यह प्रतीति नहीं होती, तो जिस अभावकी प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरत हेतुके अधिकरणमें न रहे ऐसा अभाव गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभाव हुआ, इसका प्रतियोगितावच्छेदक गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तात्व है; वही साध्यतावच्छेदक है, अनवच्छेदक साध्यतावच्छेदक न हुआ, मानो अतिव्याप्तिका वारण हुआ। इसी भांति प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतामें साध्यतावच्छेदक संबंधावच्छिन्नत्व विशेषण देना चाहिये, नहीं तो पर्वतो वह्निमान् धूमात् महानसवत् इस सद्धेतुमें अव्याप्ति लगेगी। जैसे कि जिस अभावकी प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता पर्वत वा महानसमें न रहे, ऐसा अभावही अप्रसिद्ध है; क्यों जब तक किसी संबंधका निवेशन करेंगे, तो जो अभाव धरोगे सबकी कालिक संबंधावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता पर्वत आदि हेत्वधिकरणोंमें रहजावेगी, अर्थात जो अभाव धरोगे सबका प्रतियोगी कालिक-

संबंधकरके पर्वतआदिमें रहजावेगा, तो उक्तअभावकी अ
प्रसिद्धि होनेसे अव्याप्ति लगेगी। साध्यतावच्छेदक संबंधाव
च्छिन्नाधिकरणताका निवेश किया तो उक्तसद्धेतुमें घटा
भाव धरकेही अव्याप्तिका वारण होजायगा; जैसा कि स
द्धेतुमें पक्षका साध्यके साथ जो संबंध गृहीत है, उसे सा
ध्यतावच्छेदक संबंध कहते हैं; तो पर्वतो वह्निमान् धूमात्
महानसवत् इस अनुमानमें वह्निका पर्वतसे संयोग संबंध
है; इसलिये उक्तसद्धेतुमें साध्यतावच्छेदक संयोगसंबंध
हुआ; संयोगसंबंधसे घटाभावका प्रतियोगी घट धूम हेतु
के अधिकरण पर्वतआदिकोंमें नहीं रहता; अर्थात् घटाभा
वका प्रतियोगितावच्छेदक जो घटत्व है, संयोगसंबंधाव
च्छिन्न घटत्वावच्छिन्नाधिकरणता घटवाले भूतलमें रहेगी,
पर्वत महानसआदि धूमाधिकरणमें न रहेगी; इससे प्रतियो
गि व्यधिकरण हेतुसमानाधिकरण अभाव उक्तसद्धेतुमें घ
टाभावआदि हुए; इन अभावोंके प्रतियोगितावच्छेदक घ
टत्व आदिसे भिन्न साध्यतावच्छेदक वह्नित्व है, वह्नित्वाव
च्छिन्नाधिकरण पर्वतआदिकोंमें धूम रहगया मानो अव्या
प्ति हटगई। इसीभांति "हेतुसमानाधिकरण इनअक्षरोंका
अर्थभी" हेतुके अधिकरणमें रहनेवाला" यह छोड़के हे
तुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता वालेमें रहनेवाला य
ह अर्थ करना; नहीं तो घटो द्रव्यगुणकर्मान्यत्व विशिष्टस
त्वात् पटवत् इससद्धेतुमें अव्याप्ति लगेगी। यथा पीछेसि
द्ध कर चुके हैं कि गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्ता और शुद्ध
सत्ता एकही है; किंतु गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तात्वावच्छि

न्नाधिकरणता और सत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणता ये भिन्न २ हैं; और इस सद्धेतुमें समवाय संबंध साध्यतावच्छेदक संबंध है; तो ऐसा अभाव कि जिसकी समवाय संबंधावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता विशिष्ट सत्ताके अर्थात् सत्ताके अधिकरण द्रव्य वा गुण वा कर्ममें न रहै; द्रव्यत्वाभावही होगया, द्रव्यत्वाभावका प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्वत्व है; वही साध्यतावच्छेदक है, तो अव्याप्ति लगी। हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणताका निवेश करनेसे इस अव्याप्तिका वारण होगया; जैसाकि उक्त सद्धेतुमें हेतुतावच्छेदक गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तात्व है; समवाय संबंधावच्छिन्न गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणता वाले द्रव्यमें जिस अभावकी साध्यतावच्छेदक संबंधावच्छिन्न अर्थात् समवायसंबंधावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता न रहै; ऐसा अभाव द्रव्यत्वाभाव नहीं है; क्योंकि समवाय संबंधावच्छिन्न द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणताही द्रव्यमें रहती है; किंतु समवाय संबंधावच्छिन्न गुणत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणता द्रव्यमें नही रहती है; इसलिये ऐसा अभाव गुणत्वाभाव हुआ, गुणत्वाभावका प्रतियोगितावच्छेदक गुणत्वत्व है; गुणत्वत्वसे भिन्न साध्यतावच्छेदक द्रव्यत्वत्व है; तदवच्छिन्नाधिकरण द्रव्यमें विशिष्ट सत्ता हेतु रहगया, अव्याप्ति हटगई। इसीरीति इस हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतामें हेतुतावच्छेदक संबंधावच्छिन्नत्व विशेषण भी देना, नहीं तो पर्वतो वह्निमान् धूमात् महानसवत्

इस संकेतमें अव्याप्ति लगेगी; जैसे कि संबंधका निवेश करने से विना धूमका अधिकरण हृदभी कालिक संबंधसे होजावेगा; और २ संबंधोंसे सारे पदार्थ धूमाधिकरण होजावेंगे; तो ऐसा अभाव कोई नहीं मिलेगा, कि जिसकी प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता जगतसे वाहरकहीं चलीजावेगी। जब हेतुतावच्छेदक संबंधावच्छिन्नत्व विशेषण हेत्वधिकरणतामें दिया, तो अव्याप्ति हटगई, क्यों उक्त संकेतमें धूमको संयोग संबंधसे हेतु कियाहै; तो हेतुतावच्छेदक संबंध संयोग हुआ, संयोग संबंधसे धूमाधिकरण पर्वत है; पर्वतमें घटाभावकी संयोग संबंधावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता नहीं रहती, इससे संयोग संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक घटाभाव ही धरलिया; जिसका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है, घटत्वसे भिन्न साध्यतावच्छेदक वह्नित्व है, वह्नित्वावच्छिन्नाधिकरण पर्वतमें धूम रहगया, मानो अव्याप्ति हटगई। तो सारा लक्षण ऐसा हुआ, कि साध्यतावच्छेदक संबंधावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता शून्य हेतुतावच्छेदक संबंधावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतावद्वृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्तित्वं। अर्थात् जिस अभावकी साध्यतावच्छेदक संबंधावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता हेतुतावच्छेदक संबंधावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता वाले देशमें न रहे उस अभावके प्रतियोगितावच्छेदकसे भिन्न जो

साध्यतावच्छेदकतरवच्छिन्नाधिकरणमें हेतुका रहना व्याप्तिकहातीहै । इसलक्षणमें प्रतियोगिव्यधिकरण हेतु समानाधिकरण अभावकी प्रतियोगिता किसी एकसंबंधसे अवच्छिन्ना नहीं माननी, क्योंकि बिना प्रयोजनके नैयायिकलोग कहीं संबंधावच्छिन्नत्व वा धर्मावच्छिन्नत्व नहीं देतेहैं; परंतु गौरव दोष देकर जगदीशने इस प्रतियोगितामें साध्यतावच्छेदक संबंधावच्छिन्नत्वदिया है। गौरवयहहै, कि प्रतियोगितामें संबंधावच्छिन्नत्व यदि नदेवें, तो पर्वतोवह्निमान् धूमात् महानसवत् इस सद्धेतुमें संयोगेन घटाभाव, समवायेन घटाभाव, कालिकेन घटाभाव, और स्वरूपेणघटाभाव, इत्यादि अनंत अभावधरके लक्षण समन्वयकरोगे; जहांकेवल संयोगेन घटाभाव लेयरके समन्वय होसकताहै; और जब प्रतियोगिता में साध्यतावच्छेदक संबंधावच्छिन्नत्वदियातो समवायेन घटाभावआदि सारे अभावहटजावेंगे; केवल संयोगेन घटाभावधराजायगा। परंतु इतना जानना चाहिये; कि प्रतियोगितामें साध्यतावच्छेदक संबंधावच्छिन्नत्वजब दियातो प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतामें प्रतियोगितावच्छेदक संबंधावच्छिन्नत्व अवश्यदेना, नहीं तो पर्वतोवह्निमान्धूमात् महानसवत् इस सद्धेमें ऐसाअभावही अप्रसिद्धहोजावेगा; कि जिसका प्रतियोगीपर्वतमें नरहेगा। क्योंकि कालिक संबंधसे घटपटआदि सारे पदार्थ पर्वतआदि अन्य पदार्थोंमें रहजातेहैं; इससे प्रतियोगितावच्छेदक संबंधावच्छिन्नत्वविशेषण जब अधिकरण-

तामें दियातो अप्रसिद्धि हटगई। क्योंकि अभावका प्रतियो-
गीके साथ जिस संबंधसे विरोध हो; अर्थात् अभावके अ-
धिकरणमें प्रतियोगी जिस संबंधसे न रहे; उसे प्रतियोगि-
तावच्छेदक संबंध कहते हैं। प्रकृतमें साध्यतावच्छेदक
संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताकघटाभावके अधिकरण
में घट साध्यतावच्छेदक संबंधसे नहीं रहेगा; इससे प्रतियो-
गितावच्छेदक संबंध भी इस लक्षणमें साध्यतावच्छेद-
क संबंध ही हुआ; अर्थात् संयोग संबंध हुआ, संयोगसंबं-
धसे घट भूतलमेंही रहेगा, हेतुके अधिकरण पर्वतमें नहीं
रहेगा, अप्रसिद्धि दोष हटगया। और कालो घटवान् म-
हाकालत्वात् महाकालवत् इस सद्धेतुमें कालिक संबं-
धसे घट साध्य है; और कालिक संबंधसे हेतुके अधिकर-
ण महाकालमें सारे जगत्‌के पदार्थ रहते हैं; इससे ऐसा
अभाव इस सद्धेतुमें अप्रसिद्ध हुआ; कि जिसका प्रतियो-
गी प्रतियोगितावच्छेदक (कालिक) संबंधसे हेतुके अ-
धिकरण महाकालमें न रहे, तो अव्याप्ति लगी। इसके ह-
टानेवाले ऐसा लक्षण करते हैं; कि जिस २ अभावकी प्र-
तियोगितावच्छेदक संबंधावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेद-
कावच्छिन्नाधिकरण जो हेतुतावच्छेदक संबंधावच्छिन्न
हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतावाले देशमें न रहे;
ऐसे २ अभावोंकी सारी प्रतियोगिताओंमें यदि साध्यताव-
च्छेदक संबंधावच्छिन्नत्व और साध्यतावच्छेदक धर्माव-
च्छिन्नत्व ये दोनों न रहें, तो साध्यतावच्छेदक धर्मावच्छि-
न्नाधिकरणमें हेतुका रहना व्याप्ति कहाता है। इस लक्षण

को प्रतियोगितार्थिक उभयाभावघटितलक्षणाभीकर
तेहैं; उक्तसद्धेतुमें समवायेन घटाभावपरके अव्याप्ति हट
जायेगी, क्योंकि समवायेन घटाभावका प्रतियोगितावच्छे
दक संबंध समवाय है; समवायसंबंधसे घट कपालोंमें रह
ताहै, महाकालमें नहीं रहता, इससे ऐसा अभाव कि जिस
का प्रतियोगी प्रतियोगितावच्छेदक संबंध (समवाय) से
महाकालमें नरहे; समवायेन घटाभाव हुआ, इस अभाव
की समवाय संबंधावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्न प्रतियोगितामें
चाहे घटत्वावच्छिन्नत्व है; भी परंतु कालिकसंबंधावच्छि
न्नत्व नहीं है, इससे दोनोंका अभाव रहगया। क्योंकि यह
व्यवहार देखनेमें प्रसिद्ध आता है; कि जहां एक मनुष्य हो
भी पर दूसरा न हो, तो विना सोचेही कह देते हैं कि यहां
दो मनुष्य नहीं हैं; तो कालिक संबंधसे घटके अधिकरण
महाकालमें महाकालत्व हेतु रहगया, अव्याप्ति हटगई।
पर्वतो धूमवान् वह्नेर्महानसवत् इस व्यभिचारीमें उक्त ल
क्षणकी अतिव्याप्ति लोग देते हैं; कि जिस अभावका प्रति
योगी हेतुके अधिकरणमें न रहै, ऐसा अभाव संयोगेन घ
टाभाव हुआ, इसकी संयोग संबंधावच्छिन्न घटत्वावच्छि
न्न प्रतियोगितामें चाहे संयोग संबंधावच्छिन्नत्व है, परंतु
धूमत्वावच्छिन्नत्व नहीं है, तो मानो दोनों नहीं रहे, अति
व्याप्ति लगी। यह अतिव्याप्ति केवल भ्रमही है; क्योंकि घ
टाभावकी प्रतियोगितामें चाहे उक्त उभयाभाव रह गया, तोभी
संयोगेन धूमाभावकी प्रतियोगितामें संयोगसंबंधावच्छिन्नत्व
और धूमत्वावच्छिन्नत्व दोनों रहगये, अतिव्याप्ति हटगई। अयं संयोगो

नसमवायिमान् घटत्वात् घटवत् इस सद्धेतुमें अव्याप्ति हटा-
नेकेलिये साध्यतावच्छेदक संबंध और धर्म इनदोनोंका नाम
लेके निवेशकरना पड़ताहै; नहींतो अव्याप्तिलगेगी, यथा
घटमें कोई संयोगी (द्रव्य) समवाय संबंधसे नहीं रहता,
क्यों घट अन्त्यावयवीहै, इससे समवायेन संयोग्यभावभी
घटमेंलियाजायगा; इसकी प्रतियोगितामें संयोगावच्छिन्न-
त्व और समवायावच्छिन्नत्व ये दोनों रहगए, अव्याप्तिल-
गी। संबंध और धर्मका नामलेके जब निवेशकिया तो स-
मवायेन संयोग्यभावकी प्रतियोगितामें संयोग संबंधाव-
च्छिन्नत्व भी नहीं है। और समवायधर्मावच्छिन्नत्व भीनहीं
है तो उभयाभावआगया अव्याप्तिहटगई। क्योंकि समवाये-
न संयोग्यभावकी प्रतियोगिता समवायसंबंधावच्छिन्ना
और संयोगधर्मावच्छिन्नाहोगी; नकि संयोगसंबंधावच्छि-
न्ना और समवायधर्मावच्छिन्नाहोगी; किन्तु संयोगेनसम-
वाय्यभावकी प्रतियोगिता ऐसीहोनीथी; कि जिसमें उक्त
उभयाभाव नरहता, परन्तु वायुतेजआदि अनेक समवा-
यी संयोग संबंधसे घटमें रहतेहैं; इसलिये उक्त प्रतियो-
गिता धरही नहीं सकतेहैं; इसमें यह जानना चाहिये, कि
संबंधमें रहनेवाली अवच्छेदकतासे धर्ममें रहनेवाली
अवच्छेदकताभिन्नहीहोतीहै; भेद इनमें यहहै, कि धर्म
जब अवच्छेदक (विशेषण) होताहै, तो अवश्य किसी
संबंधसेही विशेषणहै। औरसंबंध जब अवच्छेदकहै, तो
अनवस्थाके भयसे किसी संबंधकी अपेक्षानहीं रखता।
और यह बात व्यवहारसेभी सिद्धहै; लाघवसे जोकार्यसि-

ष्ट होजावे, तो उसके अर्थ गौरवकरना महादोषहै । इससे
उक्त लक्षणोंकी पर्वतः प्रमेय धूमवान् वह्नेः महानसवत्
इस व्यभिचारीमें अतिव्याप्तिलगेगी; अथवा पर्वतः प्रमे-
यवह्निमान् धूमात् महानसवत् इस सद्धेतुमें अव्याप्तिल
गेगी । जैसे पहिलाजो लक्षणहै, कि जिस अभावकाप्र
तियोगीहेतुके अधिकरणमें नरहै, उसअभावके प्रतियो
गितावच्छेदकसे भिन्नजोसाध्यतावच्छेदकतदवच्छि-
न्नाधिकरणमेंहेतुकारहनाव्याप्तिहै । इसलक्षणकी उ-
क्त व्यभिचारीमें अतिव्याप्तिलगेगी, क्योंकि धूमत्वकी अपे
क्षाकरके प्रमेय धूमत्व गुरुधर्महै, इसलिये बड़ा पुरुषार्थ
करके प्रमेय धूमाभाव परभी लेवें, तो प्रमेयधूमाभावका
प्रतियोगिता वच्छेदक लाघवसे धूमत्वही होवेगा; धूमत्व
से भिन्नसाध्यतावच्छेदक प्रमेय धूमत्व हुआ, अतिव्याप्तिल
गी । और प्रतियोगिताधर्मिक उभयाभाव घटित लक्षण
कीभी पर्वतः प्रमेयवह्निमान् धूमात् महानसवत् इससद्धे
तुमें अव्याप्तिलगेगी, क्योंकि वह्नित्वकी अपेक्षा प्रमेय वह्नि
त्व गुरुहै; इससे प्रमेयवह्नित्व न किसीका अवच्छेदक है;
और न कोई प्रमेयवह्नित्वावच्छिन्नहै, इससे संयोग संबंधा
वच्छिन्नत्व और प्रमेयवह्नित्वावच्छिन्नत्व यह उभयवंध्या
पुत्र वा कूर्मरोमके तुल्यहुआ; परन्तु मनुष्य पहिले जिस
वस्तुको जानलेताहै; तो पीछेसे उसवस्तुके अभावको
जानताहै; अर्थात् इस स्थानमें वह वस्तु नहीं है, यह बात
पीछेसेही जानीजातीहै, इस अव्याप्ति और अतिव्याप्तिके
हटाने वास्ते कई आचार्य ऐसालिखतेहैं; कि चाहे कंबुग्री

वादिमत्वसे न्यूनत्वलघु (छोटा) भीहै, और कंबुग्रीवादिम त्वके स्थान न्यूनत्वको अवच्छेदकमाननेमें दोषभी कोई नहीं लगता, तोभी कंबुग्रीवादिमान्नास्ति इस शाब्द प्रतीतिमें न्यूनत्वका बोधक पदकोई नहींहै; और यह बात आगे स्पष्ट करके लिखीजावेगी, कि शाब्दबोधमें संबंधसे बिनापद जन्य पदार्थोंकाही ज्ञानहोताहै; जिसका बोधक पदनहो उस पदार्थका ज्ञानशाब्द बोधमें नहीं होता इससे उक्तशाब्द प्रतीतिमें कंबुग्रीवादिमत्वकोही प्रतियोगितावच्छेदकमानतेहैं; तो इन युक्तिओंसे गुरुधर्मकोभी अवच्छेदकतासिद्धहुई; उक्त अव्याप्ति और अतिव्याप्ति सारेदोष हटगए। कई ग्रंथकार लाघवको बहुत प्रमाण समुझके इन दोषोंके हटाने वास्ते पारिभाषिक अवच्छेदकमानाकरतेहैं, यथा प्रतियोगिव्यधिकरण हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकं यद्धर्मविशिष्टसंबंधिनिष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकं सधर्मः पारिभाषिकावच्छेदकः तद्भिन्नंयत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यम्॥ अर्थात् जिसअभावका प्रतियोगीहेतुके अधिकरणमें न रहे ऐसे अभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्म जिसधर्मवालेपदार्थके अधिकरणमें रहनेवाले अभावके प्रतियोगितावच्छेदकसेभिन्नहो वहधर्मपारिभाषिकावच्छेदक होताहै, इससे भिन्न जो साध्यतावच्छेदकतदवच्छिन्नाधिकरणमें हेतुकारहनाव्याप्तिहै। ऐसा लक्षण करनेसे उक्त अव्याप्ति और अतिव्याप्तिदोनों दोष हटगए, जैसे उक्त सद्धेतु में जिस अभावका प्रतियोगी हेतुके अधिकरण पर्वत

आदिमें नरहे, घटाभावऐसा अभाव हुआ, घटाभावका प्र-
तियोगितावच्छेदक घटत्वधर्म " घटत्ववालेघटके अधि-
करणभूतलमें वर्त्तमान जो पटआदिकोंका अभाव इन अ-
भावोंके प्रतियोगितावच्छेदक पटत्वआदिकोंसे भिन्नहै,
इसलिये घटत्व पारिभाषिकावच्छेदक हुआ, घटत्वसे
भिन्नसाध्यतावच्छेदकप्रमेयवह्नित्वहै, तदवच्छिन्नाधि
करण पर्वतआदिकोंमें धूमरहगया तो अव्याप्तिहटगई।
इसीभांति उक्त व्यभिचारीमें जिस अभावका प्रतियोगीव
ह्नि हेतुके किसी एक अधिकरणमें नरहे, ऐसा अभाव
प्रमेय धूमाभाव पकलिया, प्रमेय धूमाभावका प्रतियो
गितावच्छेदक चाहे लाघव से धूमत्वहीहो; परन्तु वह
धूमत्व" प्रमेयधूमत्ववाले धूमके अधिकरण पर्वतमें व-
र्तमान अभाव धूमाभावतो नहीं होसकता क्यों धूमही
पर्वतमें रहताहै; किंतु घटाभाव पर्वतमें रहेगा, घटाभाव
का प्रतियोगितावच्छेदकघटत्वहै, अनवच्छेदक जोधूम
त्वहै" इस प्रमेय धूमत्वसे भिन्नसाध्यतावच्छेदक नहीं
हुआ, अतिव्याप्ति हटगई ॥ अब व्यतिरेक व्याप्तिका विचा
रकरतेहैं, जिस २ स्थानमें साध्य नरहे उन सारे स्थानोंमें
हेतुका नरहना व्यतिरेकव्याप्तिहै; अर्थात् साध्याभावसे
हेत्वभावका न्यूनदेशमें नरहना, व्यतिरेक व्याप्तिहै; इसी
युक्तिसे ग्रंथकारोंने एक लक्षण निकालाहै; कि साध्या
भावव्यापकीभूताभाव प्रतियोगित्वम् अर्थात् जिसहे
तुका अभाव साध्याभावसे न्यूनदेशमें नरहे, उस हेतु
का व्यतिरेकी सद्धेतु कहेंगे। जैसा कि द्रव्यत्वतद्भिन्न

गुणवत्वात् यन्नैवंतन्नैवं इस अनुमानमें द्रव्य पक्षहै, औ
र द्रव्यसे इतर जितने पदार्थ हैं, सबका भेद साध्यहै, और
गुणवत्व (गुण) हेतुहै। परन्तु सारे द्रव्य पक्षहैं, इससे अ
न्वयदृष्टांत नमिला, किंतु यह व्यतिरेकीहै, और समन्वय
करने वास्ते इस लक्षणमें व्यापक पद जो आयाहै, उसकी
व्याख्या लिखताहूं। स्वाधिकरण हृत्यभावा प्रतियोगीको
व्यापक कहतेहैं; स्वपदसे उसका ग्रहणकरनाकि जिस
काव्यापक बनानाहो; उसेही व्याप्यभी कहतेहैं; अर्था
त् व्याप्यके अधिकरणमें जिसका अभाव नरहे उसेव्याप
कहतेहैं; तो लक्षणका सारा अर्थ यह हुआ, कि साध्याभा
वाधिकरण हृत्यभावा प्रतियोग्यभाव प्रतियोगित्वं। अर्था
त् साध्याभावके अधिकरणमें जिसका अभाव नरहे, ऐसे
अभावका प्रतियोगी जो हेतु उसे सद्धेतु कहतेहैं; जैसा कि
उक्त सद्धेतुमें द्रव्येतरभेद साध्यहै; जो केवल द्रव्यमेंही र
हताहै, और साध्याभाव द्रव्येतर भेदाभाव (द्रव्यभेद) हु
आ, जो द्रव्यसे भिन्न सारे पदार्थोंमें रहताहै, वहां जिसका
अभाव नरहे, ऐसा अभाव गुणवत्वाभाव हुआ, क्योंकि द्र
व्यभेदवाले गुणआदिकोंमें गुणवत्वाभावाभाव (गुण)
नहीं रहताहै; गुणवत्वाभावकाप्रतियोगी गुणवत्वहै, मा
नो सद्धेतुहै। और पर्वतो धूमवान् वह्नेः महानसवत् इ
स व्यभिचारीमें साध्याभाव धूमाभावहै, धूमाभावके अधि
करणमें जिसका अभाव नरहे, ऐसा अभाव वह्न्यभाव क
भी नहोगा, क्योंकि धूमाभावके अधिकरण लोहपिंडमें
वह्न्यभावका अभाव (वह्नि) रहताहीहै; मानो अतिव्या-

ति हरगई। और पर्वतो वह्निमान् धूमात् महानसवत् इस सद्धेतुको अन्वयव्यतिरेकी कहते हैं; क्योंकि अन्वय नियम और व्यतिरेक नियम दोनों इसमें संगत होजाते हैं; जैसा धूमहेतु जिस २ स्थानमें रहता है, उन संपूर्ण स्थानोंमें वह्निभी रहजाताहै, यह मानों अन्वय नियम लगगया। और जहां २ वह्नि नहीं रहती वहां (जलआदि कोंमें) धूमभी नहीं रहताहै, मानों यह व्यतिरेक नियम लगगया, इनदोनों नियमोंके लगने से अन्वय व्यतिरेकी सद्धेतु कहाहै। यह जो दो प्रकारकी व्याप्ति कहीहै, इसकाज्ञान (जानना) अनुमितिकाकरणहै, अर्थात् अपने व्यापारके द्वारा अनुमितिको उत्पन्न करताहै; और व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञान अर्थात् व्याप्तिवाले हेतुको पक्षमें विशेषणरूपसे जानना परामर्शकहाताहै, यह परामर्श अनुमितिकी उत्पत्तिमें व्यापारहै; परन्तु व्याप्ति अन्वय व्यतिरेक भेदसे दोप्रकारकीहै, इससे परामर्शभी दोही हुए दोनोंका उदाहरण संक्षेपसे अन्वय व्यतिरेकीमें दिखादेताहूं। पर्वतोवह्निमान् धूमात् महानसवत् इस सद्धेतुमें अन्वय नियमसे ऐसा परामर्श होगा, कि "धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदक वह्नित्वावच्छिन्नसमानाधिकरणधूमवान्पर्वतः" अर्थात् धूमवालेदेशमें रहनेवाले अभावके प्रतियोगितावच्छेदकसे भिन्न जो साध्यतावच्छेदकतदवच्छिन्नाधिकरणमें रहनेवाला धूमपर्वतमेंहै। और उक्त सद्धेतुमें व्यतिरेक नियमसे ऐसा परामर्श होगा; कि वह्न्यभावव्यापकीभूता

भाव प्रतियोगिधूमवान्पर्वतः अर्थात् वह्न्यभावके अधि
करणमें जिसका अभाव नरहे ऐसे धूमाभावका प्रतियो
गी धूमपर्वतमेंहै । इन दोनों परामर्शोंको संक्षेपसे एक
कहतेहैं, कि वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः वा वह्निव्याप्यो धूमः
पर्वते इन परामर्शोंसे जो ज्ञान उत्पन्न होताहै, कि पर्वतोव
ह्निमान् वा वह्निः पर्वते इसे अनुमितिकहतेहैं । और जिस
अनुमानमें उपाधिलगजावे, वह दुष्ट होजाताहै, इससे अनु
मानकी रचनामें शुद्धिके हेतु उपाधिका जानना भी आव
श्यकहै; क्योंकि उपाधिकायही प्रयोजनहै, कि जिस अनु
मानमें उपाधिलगजाय, वहां व्यभिचारका अनुमानकराके
उस अनुमानको दुष्टकरदेतीहै । साध्यव्यापकत्वेसति साध
नाव्यापकत्व उपाधिकालक्षणहै; अर्थात् जो धर्म साध्यका
व्यापकहो (साध्यके किसीभी अधिकरणमें जिसका अ
भावनरहे) और साधन (हेतु) का जो न व्यापक हो " हे
तुके किसीएक अधिकरणमें जिसका अभावरहजावे"
उसे उपाधिकहतेहैं. और अनुमानमें सदा हेतुका व्यापक
साध्य होताहै. परन्तु उपाधि युक्त अनुमानमें साध्यका
व्यापक उपाधि यदि हेतुका व्यापक नहीं तो उपाधिसे शू
न्यदेशमें रहने वाला साध्यकदासे हेतुका व्यापकहोगा॥
इसी युक्तिसे उपाधिवाले अनुमानमें व्यभिचारदेतेहैं, जै
सा कि पर्वतो धूमवान् वह्नेः महानसवत् इस व्यभिचारीमें
आर्द्रेधनसंयोग उपाधिहै. यह आर्द्रेधनसंयोग (गीली
लकड़ीका संबंध) धूमका व्यापक है अर्थात् विना इस
आर्द्रकाष्ठके संबंधसे धूमनहीं होता और वह्निको अ

व्यापक है, कि बह्निके अधिकरण लोह पिंडमें आर्द्र काष्टका संबंध नहीं है; इस अनुमानमें धूमका व्यापक आर्द्रकाष्टसं-योग जब वह्निका व्यापक नहीं है, तो धूम साध्यकहांसे व-ह्निका व्यापक होगा, किंतु यह अनुमान व्यभिचारी है, यह बात उपाधिसे सिद्ध हुई। इस उपाधिके लक्षणमें लोग य-ह दोष देते हैं; कि सश्यामो मित्रातनयत्वात् मित्रातनयवत् इस व्यभिचारी अनुमानमें शाकपाक जन्यत्व उपाधि नहो-नी चाहिये; क्योंकि शाकपाक जन्यत्व चाहे मित्रातनयत्व हेतुका अव्यापक तो है, कि "हमारे मित्राके गौर पुत्रमें शा-कपाक जन्यत्व नहीं रहा" परन्तु यह साध्यका व्यापक न-हीं है; क्योंकि श्यामत्व नील पटमें भी रहा, वहां तो शाकपाक जन्यत्व नहीं है। इस अव्याप्ति दोषके हटाने वास्ते यद्धर्माव-च्छिन्न साध्यव्यापकत्वे सति तद्धर्मावच्छिन्नसाधनाव्याप-कत्वं उपाधिः अर्थात् जिस विशेषणवाले साध्यका व्याप-क और उसी विशेषणवाले हेतुका अव्यापक धर्म उपाधि कहाता है; उक्त व्यभिचारीमें मित्रातनयत्वविशिष्टश्यामत्व का तो व्यापक है; शाकपाक जन्यत्व और मित्रातनयत्वका अव्यापक, इससे उक्त व्यभिचारीमें शाकपाक जन्यत्व उपा-धि है। और उपाधि विचारमें यह निवेश करनेसे कि जिस धर्म वाले साध्यका व्यापक और उसी धर्म वाले साधन (हेतु) का अव्यापक उपाधि होता है; वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्ष स्पर्शाश्रयत्वात् इस अनुमानमें उद्भूतरूपवत्व भी उपाधि हो गया; क्योंकि प्रत्यक्षत्व साध्यका व्यापक तो नहीं है; उ-द्भूतरूपवत्व जिसमें रूप रस आदि गुणोंमें प्रत्यक्षत्व तो

रहताहै; परन्तु गुणोंमें गुणके न रहनेसे उद्भूत रूपवत्व वहां नहीं रहता, तो भी स्पर्श विशिष्ट प्रत्यक्षत्व जहां २ घट पट आदि पदार्थोंमें रहताहै; वहां सारे उद्भूत रूपवत्व भी रहग या, तो साध्यका व्यापक भी होगया, और स्पर्श विशिष्ट प्र त्यक्षत्व कहांहै, वायुमें वहां उद्भूत रूपत्व नहीं रहा, मानों सा धन (हेतु) का अव्यापक होगया, इससे उपाधिहै। यह उपाधि साक्षात् अनुमितिसे अथवा व्याप्तिज्ञानसे विरोधन हीं रखती, किंतु व्याप्तिके विरोधी व्यभिचारका अनुमान क रादेनेसे व्यभिचारके द्वारा परंपरासे व्याप्तिज्ञानकाही प्रति बंधक उपाधि होतीहै॥ जहां व्याप्तिज्ञान परामर्श आदिसा री सामग्री अनुमानकीहो; परंतु साध्यका निश्चय पक्षमें होजावे, तो अनुमितिकभी नहींहोती, तो सारे कारण रहे भी, और कार्यनहीं उत्पन्न हुआ, इससे किसी कारणकीन्यू नतासे सामग्रीमें न्यूनता जानीगई; वह कारण पक्षताहै। कई आचार्यसाध्यके संशयको पक्षता मानकर उक्तदोष को हटातेहैं; कि उक्तस्थलमें साध्यका निश्चय होनेसे साध्य संशय (पक्षता) नहीं है; इससे अनुमिति नहोगी, परन्तु यह पक्षता का लक्षण अच्छा नहींहै, क्योंकि साध्यका निश्चय भी होय तो इच्छाके अधीन अनुमिति होतीहै, सो न होनी चाहिये जिससे वहां साध्यका संशय नहींरहा, इ सीभांति अनुमित्सा(अनुमितिकी इच्छा) भी नहीं पक्षताहै, क्योंकि मेघके गर्जनसे विनाइच्छाके भी मेघका अनुमान होताहै, सो नहोनाचाहिये किंतु "सिषाधयिषाविरहवि शिष्ट जो सिद्धि उसका अभावपक्षता कहाताहै" यह ल-

क्षण निर्दोष है, इसका समन्वय करने के वास्ते लक्षण के पदार्थ को स्पष्ट करता हूं; पक्ष में साध्य की अनुमिति करने वाली इच्छा को अनुमित्सा वा सिषाधयिषा कहते हैं; और पक्ष में साध्य के निश्चय को सिद्धि कहते हैं, तो यह अर्थ निकला कि जिसके साथ सिषाधयिषा न हो, ऐसे साध्य निश्चय का अभाव पक्षता है। तो जहां व्याप्तिज्ञान और परामर्श है, वहां अनुमिति होजावेगी, क्योंकि वहां साध्य का निश्चय नहीं है, किन्तु साध्य निश्चय का अभाव है, सो तो पक्षता रहगई। और जहां परामर्श सिद्धि और सिषाधयिषा क्रम से हैं; वहां सिषाधयिषा के समय परामर्श का नाश होजावेगा, क्योंकि ज्ञान इच्छा आदि जो विभुओं के विशेष गुण हैं, इनमें दो स्वभाव हैं, एक तो यह कि इनमें से कोई दो एक क्षण में कभी नहीं उत्पन्न होंगे; वरुक एक ज्ञान के उत्पत्ति क्षण में दूसरा ज्ञान भी नहीं उत्पन्न होता। दूसरा यह कि विना अपेक्षा बुद्धि के सारे विभुओं के विशेष गुण पहिले क्षण में उत्पन्न दूसरे क्षण में स्थित और तीसरे क्षण में नष्ट होते हैं। इससे यहां अनुमिति नहोगी, इसी भांति सिषाधयिषा, सिद्धि, और परामर्श जहां क्रम से हों; वहां परामर्श के समय सिषाधयिषा का नाश होजावेगा, इससे वहां अनुमिति नहोगी, क्योंकि जिसके साथ सिषाधयिषा नहो, ऐसा साध्य निश्चय वहां रहगया, और इसी भांति सिद्धि, परामर्श, और सिषाधयिषा ये तीनों जहां इस क्रम से हों वहां सिषाधयिषा के समय सिद्धि का नाश होजाने से अनुमिति होही जावेगी। और जहां "वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो

वह्निमान्" यह सिद्ध्यात्मक परामर्श हो, और पर्वतो वह्न्यनु-
मितिर्जायतां यह अनुमित्सा हो, वहां यद्यपि सिद्धि तो है, परंतु
सिषाधयिषा भी साथ है, सिषाधयिषासे विना सिद्धि कोई
और सिद्धि होगी, उसका अभाव यहां रह गया, इससे अनु-
मिति यहां अवश्य होगी। इसी स्थानमें अनुमितिकी उत्प-
त्तिके लिये सिषाधयिषा विरह सिद्धिमें विशेषण दिया है; औ-
र येहभी जानना चाहिये, कि अनुमिति दो प्रकारकी होती है
और सिद्धिभी दो प्रकारकी होती है, एकतो पक्षतावच्छेदका-
वच्छेदेन अनुमिति अर्थात् सारे पक्षोंमें साध्यकी अनुमिति
और दूसरी पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन अनुमिति
अर्थात् किसी एकपक्षमें साध्यकी अनुमिति इसीभांति सा-
ध्यका निश्चय एकतो सारे पक्षोंमें जिसे पक्षतावच्छेदका व-
च्छेदेन साध्यनिश्चय भी कहते हैं; और दूसरा किसी एक पक्ष
में साध्यका निश्चय जिसे पक्षतावच्छेदकसामानाधिकर-
ण्येन साध्यनिश्चय भी कहते हैं; इन अनुमिति और सिद्धि-
ओंका आपसमें बाध्यबाधक भाव इसभांति है; कि जब पक्षता-
वच्छेदकावच्छेदेन साध्यनिश्चय रहै, तो कोई भी अनुमिति
नहोगी, और जब पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन सा-
ध्यनिश्चय रहे, तो पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन
अनुमिति वहां नहोगी, और पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन
अनुमिति होनेका कोई बाधक नहीं है। सारी सिद्धिओं और
अनुमितिओंका बाध्यबाधकभाव लक्षणमें इसरीति प्रविष्ट
कियाजाता है; अनुमित्साके साथरहके जो २ सिद्धि जिस २
अनुमितिको नहोनेदेवे सारीं सिद्धिओं उन अनुमितिओं

की वाधिकाहैं; और साध्यानिश्चयहोनेपर जो २ सिषाधयि
षा अनुमितिको उत्पन्नकरे, उनसारी अनुमित्साओंका अ
भावशिद्धिका विशेषणजानना । इसीभांति जहां वह्निकी
अनुमितिसामग्रीहै, और वह्निके साथ नेत्र संवंधआदि प्रत्य
क्षकी सामग्रीभी हो, तो वहां वह्निका प्रत्यक्षही होगा; प
रंतु वहां यदि वह्निकी अनुमित्सा साथहो, तो प्रत्यक्षकोह
टाकर वहां अनुमिति होजावेगी, इसलिये जहां तुल्य विष
यहों, वहां अनुमित्साविरह विशिष्ट प्रत्यक्षसामग्री अनु
मितिकी प्रतिवंधिका होतीहै । जहां घटके साथ नेत्र सं
योगआदि प्रत्यक्ष सामग्रीहो; और वह्निकी परामर्शआदि
अनुमितिसामग्रीहो, तो वहां प्रत्यक्षकी इच्छासे विना अनु
मितिहीहोगी, इसलिये जहां भिन्न २ विषयहों, वहां प्रत्य
क्षकी इच्छासे विना अनुमितिकी सामग्री प्रत्यक्षकी प्रति वं
धिकाहै ॥ विवादीके अनुमानोंमें दोषदेनेवास्ते और अपने
अनुमानोंसे सारे दोष हटानेके वास्ते हेत्वाभासों (दुष्टहेतुओं)
का जानना अभीष्टहै; इससे हेत्वाभासका निरूपण करतेहैं ।
पहिले हेत्वाभास पांचप्रकारकाहै, सव्यभिचार, विरुद्ध, सत्प्र
तिपक्ष, असिद्ध और वाधित इनपांचोंका मिलाहुआ लक्षण
यहहै; कि जिसका ज्ञान अनुमिति वा अनुमितिकरण (व्या
प्तिज्ञान) का प्रतिवंधक हो, ऐसे दोषवाले अनुमानके हेतु
को हेत्वाभास (दुष्टहेतु) कहतेहैं । दोष पांचहैं, व्यभिचार,
विरोध, असिद्धि, वाध, सत्प्रतिपक्ष, जैसाकि ह्रदो वह्निमान्
धूमात् इस अनुमानमें वह्न्यभाव वद्ह्रदवाध वह्न्यभावव्या
प्यवद्ध्रसत्प्रतिपक्ष और धूमाभाववद्ह्रदस्वरूपा सिद्धिहै ।

इनतीनोंमेंसे वह्न्यभाववद्ध्रदजोबाधहै; इसकाज्ञान अ-
नुमितिकाप्रतिबंधकहै; क्योंकि यहबात निर्विवादसे लो-
गस्वीकारकरतेहैं "जहां जिस वस्तुके अभावका निश्च-
य होजावे, अर्थात् वह वस्तु यहांनहीहै, इसका दृढ़नि-
श्चय होवे, तो वहां प्रत्यक्षहोनेसे विनावाभ्रमसे विना य-
ह ज्ञान कभी न होगा, कि वह वस्तु यहां है। इसीभांति य-
हभी स्वतःसिद्धहै कि "जहां जिसवस्तुकानिश्चय होजावे,
वहां किसी दोषसे विना वह वस्तु यहां नहीं यह उसके अ-
भावका ज्ञान कभी नहोगा" इसीस्वयं सिद्धको नैयायि-
कलोगग्राह्याभावावगाहितया प्रतिबंधकताभी कहते
हैं; इसलिये ह्रदोवह्निमान् धूमात् इस अनुमानमे प्रत्यक्षसे
ही (ह्रदमें वह्नि नहीहै) यह बाध निश्चय जबहो जावेगा,
तो ह्रदो वह्निमान् इसअनुमितिको इसीस्वयंसिद्धसे नहीं
होने देवेगा। इसीस्वयंसिद्धके दिखानेवास्ते क्रमको छो-
ड़के पहिले बाधका निरूपण थोड़ा करदिया है; बीज इसमें
यहहै, कि यह स्वयंसिद्ध प्रायःपांचोंहेत्वाभासोंमें काम दे-
वेगा, और बाधमें सामान्य लक्षण को इसरीति संगत करना;
वह्न्यभाववद्ध्रदका ज्ञान अनुमितिका उक्तस्वयं सिद्धसे प्र-
तिबंधकहै; यह वह्न्यभाववद्ध्रदबाध जिस अनुमानमेंहै;
उसका हेतु दुष्ट अर्थात् अप्रमाण होताहै। और जहां सा-
ध्याभावके व्याप्यका निश्चयहो; अर्थात् जो वस्तु साध्या-
भावसे विनाकहीं नरहे; कि जहां साध्याभावरहै, वहांहीरहै,
वह वस्तु जहांदेखीजाय, वहांभी साध्यका ज्ञान नहोगा, य-
ह भी स्वयंसिद्धहै। इसी साध्याभाव व्याप्यवत्पक्षको सत्प्र-

तिपक्षभी कहतेहैं; जिस अनुमानमें बाधदोष लगताहै; उस
में सत्प्रति पक्षभी अवश्यलगताहै; यहभी अनुमितिकाही
प्रतिबंधक होताहै। जैसाकि हृदो वह्निमान् धूमात्, इस अनु-
मानमें वह्न्यभाववद्ह्रदबाधहै; ऐसेही वह्न्यभावव्याप्यवद्ह्र-
द सत्प्रतिपक्षभीहै। और व्यभिचारतीनप्रकारकाहै; साधा-
रण असाधारण और अनुपसंहारी ये तीनों व्याप्तिज्ञानके
प्रतिबंधकहैं, साध्य जहां नरहे, वहां रहने वालाहै वह साधारणकह-
लाहै। जैसाकि धूमवान्वह्नेः इसअनुमानमें धूमशून्य लो-
हपिंडमें अग्निकानिश्चयहै, तो वह धूमशून्यवह्निर्वह्निः
(धूमशून्यदेशमेंवह्निनहीं है) इसव्याप्तिज्ञानकोकभीनहो-
नेदेगा। और साध्यके अधिकरणमें जो हेतुनरहे; उसे असा-
धारण कहतेहैं, यह सामानाधिकरण्यज्ञानको नहींहोनेदे-
गा। जैसा कि शब्दोनित्यः शब्दत्वात्, इस अनुमानमें शब्दत्व
हेतु नित्य साध्यके अधिकरण आकाश वा परमाणुमेंन-
हीहै; इस निश्चय होने पर शब्दमें वर्त्तमान जो अभाव उसके
प्रतियोगितावच्छेदकसे भिन्न जो नित्यत्व तदवच्छिन्ना-
धिकरणमें अर्थात् नित्यत्वके अधिकरणमें शब्दत्वहै; इस
व्याप्तिज्ञानको उक्त स्वयंसिद्धसे नहींहोनेदेगा। और जिस हे-
तुका साध्य अत्यंताभावका प्रतियोगी नहो; उसे अनुपसंहारी
कहतेहैं, यह व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानका प्रतिबंधक होताहै।
जैसा कि इदंवाच्यंप्रमेयत्वात्, इस अनुमान में वाच्यत्वसारे
जगतमें रहने वाला साध्यहै, निश्चयहै, कि वाच्यत्वका अभा-
व अप्रसिद्धहै; तो वाच्यत्वाभावका व्यापक जो अभाव उ-
सका प्रतियोगी प्रमेयत्वहै; इस व्यतिरेक व्याप्तिज्ञानको

नहीं होनेदेगा। और साध्यका व्यापक जो अभाव उसका प्रतियोगी हेतु विरुद्ध कहाता है; यह साध्याभावकी व्यतिरेक व्याप्तिज्ञानको करताहै; इससे साध्यकी अनुमिति को हटाकर साध्याभावकी अनुमितिको करादेगा। जैसा कि अयंघटत्ववान् पटत्वात् इस अनुमानमें घटत्वका व्यापक जो अभाव उसका प्रतियोगी पटत्वहै; यही घटत्वाभाव की व्यतिरेक व्याप्तिहै; इसके ज्ञानसे घटत्वा भावकी अनुमिति होगी, नघटत्वकी। और जैसे साध्याभाव वाले पक्षको बाध कहतेहैं; इसीभांति पक्षमें रहने वाला साध्याभाव, पक्षमें रहने वाले अत्यंताभावका प्रतियोगीसाध्य, पक्षमें रहनेवाले भेदका प्रतियोगितावच्छेदकसाध्य, पक्षमें अवृत्तिसाध्य और साध्यमें रहनेवाला पक्षवृत्तित्वाभाव इन सब कोभी बाधही कहना। इसीभांति साध्याभावव्याप्यवाला पक्ष जैसे सत्प्रतिपक्षहै; वैसेही पक्षमें रहनेवालासाध्याभाव व्याप्यभी सत्प्रतिपक्षही जानना। और साध्यतावच्छेदक के अभाववालासाध्य अथवा साध्यमें रहनेवालासाध्यतावच्छेदकका अभाव इत्यादिसाध्याप्रसिद्धि, हेतुतावच्छेदकके अभाववालाहेतु अथवा हेतुमें रहने वाला हेतुतावच्छेदकका अभाव इत्यादि हेत्वप्रसिद्धि, दृष्टांततावच्छेदकके अभाववाला दृष्टांत अथवा दृष्टांतमें रहनेवाला दृष्टांततावच्छेदकका अभाव इत्यादि दृष्टांताप्रसिद्धि, गुरुहोनेसे साध्यसंबंधिताका अनवच्छेदकहेतुतावच्छेदक अथवा हेतुतावच्छेदकमें रहनेवाला साध्यसंबंधिताका अनवच्छेदकत्व इत्यादि इन सबको व्याप्यत्वासिद्धिही कहना।

और हेतुके अभाववाला पक्ष, पक्षमें रहनेवाला हेतुका अभाव, पक्षमें अवृत्तिहेतु, हेतुमें रहनेवालापक्षवृत्तित्वाभाव, पक्षमे रहनेवाले अत्यंताभावका प्रतियोगीहेतु, पक्षमें रहनेवाले अन्योन्याभाव (भेद) का प्रतियोगितावच्छेदकहेतु इत्यादि सबको स्वरूपासिद्धि कहना। इसीभांति पक्षतावच्छेदकाभाववालापक्ष पक्षमें रहनेवाला पक्षतावच्छेदकाभाव, पक्षमें नरहनेवाला पक्षतावच्छेदक, पक्षतावच्छेदकमें रहनेवाला पक्षवृत्तित्वाभाव, पक्षमें रहनेवाले अत्यंताभावकाप्रतियोगी पक्षतावच्छेदक, पक्षमें रहनेवाले अन्योन्याभाव (भेद) का प्रतियोगितावच्छेदक पक्षतावच्छेदक इत्यादि इनसबको आश्रयासिद्धि (पक्षासिद्धि) कहना। और साध्यशून्यदेशमें वर्त्तमान हेतु, हेतुमें रहनेवाला साध्यशून्यवृत्तित्व, साध्यवालेसे भिन्नदेशमें वर्त्तमानहेतु, आदि अथवा हेतुके अधिकरण (आश्रय) में रहनेवाले अत्यंताभावका प्रतियोगितावच्छेदक साध्यतावच्छेदक, साध्यतावच्छेदकमें रहनेवाला हेतुके अधिकरणमें वर्त्तमान अत्यंताभावका प्रतियोगितावच्छेदकत्व इत्यादि इनसबको व्यभिचार कहना। इसीभांतिसाध्यके व्यापक अत्यंताभावका प्रतियोगी हेतु अथवा हेतुमें रहनेवाली साध्यव्यापक अत्यंताभावकी प्रतियोगिता, साध्यके व्यापक अन्योन्याभाव (भेद) का प्रतियोगितावच्छेदकहेतु अथवा हेतुमें रहनेवाला साध्यकेव्यापक अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदकत्व इत्यादि इनसबको विरोधकहना। इनभेदोंके जनानेमें निमित्त

यह है; कि यदि कोई पुरुष ऐसे २ भेद दिखाकर आशंका-
करे; कि हेत्वाभास तो बहुतसे हैं, फिर पांचही क्यों कहे हैं।
तो उसका यही उत्तर है, कि ऐसे २ सारे भेद इन पांचोंमेंही आ
जाते हैं; बाहर कोई नहीं रहता, इसलिये पांचही हेत्वाभा-
स हैं; अधिक अथवा न्यून कभी नहीं होसकते, इसलिये
पांचही लिखे हैं॥ कोई नगरके रहनेवाला मनुष्य था;
जिसने वनके मृग कभी नहीं देखे थे; किन्तु किसी वन
के रहनेवाले मनुष्यसे उसने सुनाथा, कि प्रायः गौकीना
ईं जिसके अवयव (अंग) हों, उसे गवय कहते हैं। दैवसं
योगसे वही मनुष्य कभी वनमें चलागया वहां उसने गौ
के तुल्य एक मृग देखा, उस मृगके अंग गौके अंगोंकी
नाईं देखके उसे उक्त बातका स्मरण हुआ; कि गौके तुल्य
अंगोंवाला मृग गवय होता है; पीछेसे उसे निश्चय हुआ,
कि ऐसे २ मृगोंको गवय कहेंगे। इसीको शक्तिग्रह कहते हैं,
इस मृगके अंगोंका गौके अंगोंकी नाईं जानना उपमिति-
का करण है; इसी सादृश्यज्ञानको उपमान कहते हैं, उक्त
वाक्यका स्मरण उपमितिमें व्यापार है, और शक्तिज्ञान
(ऐसे २ मृगोंको गवय कहेंगे) उपमिति है। और अलंकार
शास्त्रमें जिसे उपमा कहते हैं, यहांभी उसीको उपमिति क-
हते हैं केवल इतनाही भेद है, कि वहां साधारण धर्म उप
मा है और यहां साधारण धर्मका ज्ञान उपमिति है जो ध
र्म उपमान, उपमेय इन दोनोंमें रहे, उसे साधारणधर्म क-
हते हैं॥ शब्दके द्वारा जो वाक्यार्थका ज्ञान हो उसे शाब्दबो
ध कहते हैं: परन्तु पदोंके जानने बिना वाक्य और वाक्या-

हो जहत् स्वार्थ लक्षणाहै । यहां मंडपपद लाक्षणिक पद
और यज्ञका गृह लक्ष्यअर्थहै; जहां शक्य अर्थके साथही
लक्ष्य अर्थभी जानाजावे वहां अजहत् स्वार्थ लक्षणाहोती
है । जैसाकि किसी मनुष्यसे पूछागया, कि आपकागृह
कहांहै; यह सुनके उसने उत्तरदिया "मेरा घर गंगापर
है" इसवाक्यमें गंगापदका शक्य जो धाराप्रवाहहै उस-
से वक्ताका अभिप्राय नहीं सिद्धहोता क्योंकि धाराप्रवाह-
पर कुशलतासे गृहका रहना असंभवहै । इसलिये यहां गं
गापदको गंगातीरमें लक्षणामानतेहैं; देखो यहां गंगाप
दसे शक्य अर्थ धारा प्रवाह और लक्ष्य अर्थ तीर इन दोनों
का बोध होताहै; इससे यहां अजहत्स्वार्थ लक्षणा जान-
नी । प्रयोजन इस विचारसे यह सिद्धहुआ; कि शक्य अ-
र्थके संबंधको लक्षणा कहतेहैं । आसत्तिकाज्ञान, योग्य
ताकाज्ञान, आकांक्षाकाज्ञान और तात्पर्यज्ञान ये चारों-
भी शाब्दबोधके कारणहैं; इसलिये इन चारोंके स्वरूप
और फल क्रमसेलिखेहैं । बिना अंतर दिये लगातारजो
पदोंका उच्चारणकरना इसे आसत्ति कहतेहैं; फलइसका
यहहै, कि जिस मनुष्यको स्वामीने प्रातःकाल उठकर
कहा "अरेभृत्य" फिर मध्याह्नको कहा "गौको" उससे
पीछे संध्याके समय कहा "लेआ" और आधी रात्रिको
कहा कि "सोटेसे" तो ऐसे स्थानमें भृत्यने कुछभी न-
हीं समझा क्योंकि आसत्ति "लगातारपदोंका उच्चारण"
नहीं है, किंतु दोदो पहरके अंतरसे एकएक पद कहाहै,
इससे आसत्तिका ज्ञान शाब्द बोधमें अवश्यकारण मा-

नना। तो जहां स्वामिने भृत्यसे कहाकि " हे भृत्य गौकोले-
श्रा दंडसे" इस स्थानमें सुनतेही भृत्यदंड हाथमें लेकर शी
घ्रगौकोलेश्राउताहै। श्रोर एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका
यथार्थ संबंधयोग्यता कहाताहै; इस योग्यताका ज्ञानभी
शाब्दबोधमें कारणहै, जिससे पानीछिडकताहै वा दूध
छिडकताहै, यह वाक्य प्रमाणहै। श्रोर श्रागछिडताहै,
वा पत्थरछिड़कताहै, यह नहीं प्रमाण। क्योंकि छिड़-
कनेसे यथार्थ संबंध द्रवे हुए द्रव (फैलेहुए बहनेवा-
ले पदार्थ) का ही होताहै; इससे मालूम हुश्रा, कि सींच
नेमें योग्यता फैलेहुए जल श्रादि पदार्थोंकी ही होतीहै।
पत्थर वा श्राग फैलेहुए बहनेवाले नहीं हैं इससे सींचनेमें
इनकी योग्यता नहींहै। श्रोर जो पद जिस पदसे विना कु-
छ बोधना करायसके, उस पदमें दूसरे पदकी श्राकांक्षा
होतीहै; जैसा किसीने कहाकि " दही" श्रव यहां दहीश-
ब्दसे कुछ नहीं सुननेवाला जानसकता, कि दहीलेश्रा-
ऊं, वा दहीको खाजाऊं, वा दहीको लेजाऊं, वा फेंकदूं श्रो
र जबकहा कि " दहीलेश्रा" तो सुनने वाला शीघ्रही द
हीलेश्राउताहै; इससे मालूमहुश्रा, " लेश्रा" कहे विना
दहीशब्दसे कुछ यथार्थबोध नहीं होता, यही " दही" प
दको " लेश्रा" पदकी श्राकांक्षाहै, सिद्धयह हुश्रा, कि " एक
पदसे विना दूसरे पदमें श्रर्थदेनेकी सामर्थ्य नरहनी" य
ही श्राकांक्षा होतीहै। श्रोर वक्ताकी इच्छातात्पर्य कहातीहै
इसइच्छाका ज्ञानभी शाब्द बोधका कारणहै, क्योंकि जिस
शब्दके श्रनेक श्रर्थहों तोप्रकरणादिकोंसे उसकी इच्छाको

जानके एक अर्थका निश्चय कियाजाताहै। नहींतो भोजनके समय किसीने कहा सैंधव लाओ; तो वहां सुननेवाला लोनलेआताहै; घोड़ा क्यों नहीं लेआता, सैंधव शब्दका अर्थ घोड़ाभी तो है; इससे प्रतीत हुआ, कि भोजनके समय इसने सैंधवलेआओ कहा है; तो सैंधवशब्दसे इसकी इच्छा लोनकीहै; इसी भांति यात्राके समय जबवही स्वामी सैंधवलेआ; यह कहताहै; तो वही भृत्य यात्राके अवसरसे सैंधवशब्दको घोड़ेकी इच्छासे कहा हुआ, जानके घोड़ेकोही लेआवेगा, लोनको नहीं लावेगा। आसत्ति, योग्यता, आकांक्षा, और तात्पर्य्य इन चारोंका ज्ञान जिस वाक्यमें हो वही वाक्य प्रमाण होताहै; और पदोंके समूहको वाक्य कहतेहैं; सुप् विभक्तिवा तिङ्-विभक्ति जिसके अंतमें हो; उसे पद कहतेहैं। परंतु इतना स्मरण रखना आवश्यक है; कि पद वही प्रमाण होंगे; जो आपसमें परस्पर आकांक्षा रखते हों; और वाक्य वही प्रमाण होगा कि जिसकी कोई आकांक्षा शेष नहै। और शक्ति ज्ञान जिन २ हेतुओंसे होताहै; यह विस्तार पूर्वक लिखता हूं, जैसा व्याकरण, उपमान, कोश, वृद्धों केवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष विवरण, और प्रसिद्ध पदको समीपता इन सब हेतुओंसे शक्तिज्ञान होताहै। इन प्रत्येकका वर्णन इस भांतिहै: धातुप्रत्यय प्रकृति इत्यादिकोंका शक्तिज्ञान व्याकरणसे होताहै। और उपमानसे शक्तिज्ञान जैसा गवय पदका शक्तिज्ञान पीछे उपमितिका फलकहाहै, और कोशसे शक्तिज्ञान जैसा नीलपीत आदिशब्दोंसे नीलपीत

आदिरूपोंकाभी ज्ञान होताहै; और उनरूपोंवाले घटपट
आदि द्रव्यांका भी ज्ञान होताहै। वृद्धोंके वाक्यसेभी शक्ति
ज्ञानहोताहै; जैसे एकबालक था, कि जो कोकिलपक्षी
को भलीभांति जानताथा; परन्तु यह ज्ञान उसे नथा, कि
इसकोकिलको पिकभी कहते हैं; वा नहीं, दैवसंयोग
से एक दिन उसके पिताने पुत्रसे कहा कि कोकिलको
पिक भी कहतेहैं; उसदिनसे वह पिक शब्दसेभी कोकि
लकोही समुझनेलगा। और व्यवहारसेभी शक्तिज्ञान
होताहै; जैसा कोई एक बड़ा बुद्धिमान वृद्धमनुष्य अपने
स्थान पर बैठाथा; उसके पास एक बड़ा युवा सब गुणों
से भराहुआ; उसका पुत्र बैठाथा, और एक छोटा बाल
क भी वहां बैठाथा। तो जब वृद्धने पुत्रसे कहा; कि द
हीलेआ, तो शीघ्र वह उठकर दहीलेआया। यह व्यवहा
र देखके उस बालकको निश्चय हुआ, कि दही लेआ,
ऐसा कोई कहे, तो यही व्यवहार करना चाहिये; किजा
कर यह वस्तु लेआनी चाहिये। फिर वृद्धनेकहा, कि द
ही खाले, तो वह शीघ्र खाने लगपड़ा, यह देखकर उस
बालक को निश्चय हुआ, कि दहीखाले, ऐसाकहने प
र यह वस्तु मुंहमें पानी चाहिये। और फिर उस बालकने
मनमें विचारा; कि पहिले वाक्यका "लेआ" पद और इ
सवाक्यका "खाले" पद नहीं मिलते, और दहीपद देनें
वाक्योंमें एकसाहै; और जो वस्तु वह लायाथा, वही अ
ब उसने खाईहै, इससे निश्चितहै, कि दही इसी श्वेत वस्तु
को कहतेहैं। और वाक्य शेषसेभी शक्तिज्ञान होताहै;

जैसा किसीने कहा, कि हवनकरनेके चरुमें जौ बढ़ते हैं; यह सुनकर एक पुरुषने स्मरण रखा; और किसी यज्ञमें जाकर हवनकरते हुए ब्राह्मणोंके पास चरुको देखा, कि यह लेवा २ अन्न इसमें बढ़ते है; यह देखकर निश्चय किया; कि इसी अन्नको जौ कहते हैं। और एक पदके अर्थको अन्य पदसे कहना; जैसा घट है, इसका विवरण किसीने किया, कलस है, तो इस विवरणसे प्रतीत हुआ, कि घटको कलस भी कहते हैं। और प्रसिद्ध पदके सामीप्यसेभी शक्तिज्ञान होताहै; जैसा किसीने कहा इस आमके पेड़ऊपर बड़ी मधुर स्वरसे पिक बोलताहै; यहां मधुरपद और आमका वृक्ष इनके सामीप्यसे पिकसे कोकिल जाना जाताहै। ग्रंथबढ़नेके डरसे शक्तिज्ञान थोड़ाही दिखाकर छोड़दियाहै; और शाब्दबोधके प्रकरणमें इनका भी जानना उपयोगीहै; कि विद्या अठारह हीहैं; जैसे कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वणवेद ये चारोवेद और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिश्शास्त्र, छंदःशास्त्र येछः वेदोंके अंग और मीमांसाशास्त्र, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र पुराण और आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र) धनुर्वेद (शस्त्रविद्या) नादवेद (गांधर्वविद्या) अर्थशास्त्र (अश्वविद्याआदि) ये चारो मिलाकर अठारह विद्याही होतीहैं। और वेदांतशास्त्र तो उत्तरमीमांसाकोही कहते हैं; इसीभांति वैशेषिकशास्त्रभी न्यायशास्त्रकाही एकभागहै; और सांख्य योगभी धर्मशास्त्रके ही अंतर्गतहैं; इसलिये ये सब पृथक नहीं लिखे।

ब्राह्म, पाद्म, स्कांद, मार्कंडेय, शैव, वैष्णव, गाणेश, सौर, भागवत, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लैंग, वाराह, कौर्म, मात्स्य, गारुड, ब्रह्मांड, ये अठारह पुराण हैं। वशिष्ठ, नृसिंह, नंदि, नारदीय, वामन, हंस, तत्वसार, दौर्वास, शिवधर्म, कापिल, मानव, वारुण, रेणुक, वायवीय, कालीय, माहेश्वर, पाराशर्य, मारीच, भार्गव, इत्यादि बहुत प्रकार के उपपुराण हैं। और मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वशिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, आपस्तंब, उशना, कात्यायन, बृहस्पति, देवल, नारद, और पैठीनसि आदि ऋषियों के वाक्य धर्मशास्त्र कहाते हैं। और पाशुपत वैष्णव रामायण भारत आदि इतिहास भी धर्मशास्त्र में ही गिने जाते हैं। कोक, अनंगरंग, आदि कामशास्त्र आयुर्वेद (चिकित्सा) में ही गिने जाते हैं। और नीतिशास्त्र, सूपशास्त्र (रसोई बनाने की विद्या) चौसठि कला का शास्त्र ये सब अर्थ शास्त्र में ही गिने जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ, कि अठारह ही विद्या हैं। और प्रमाण शब्द प्रायः तीन भांति के होते हैं; जैसे कि विधि, मंत्र, और अर्थवाद। जिस वाक्य में लिङ्, लोट् और तव्यत् आदि कृत्य प्रत्ययों में से कोई प्रत्यय हो, उसे विधि शब्द कहते हैं। जैसे कि ज्योतिष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः इस वाक्य में यजेत यह क्रियापद आत्मने पद में यज धातु से विधिलिङ् के प्रथम पुरुष का एक वचन त प्रत्यय आकर बना; इसलिये यह विधि वाक्य है। और यह विधि अपूर्व, नियम, और परिसंख्या इस भेद से तीन भांति का

है। इनमें से "स्वर्गकामोयजेत" इसे अपूर्व विधि कहते हैं; क्योंकि स्वर्गसे बहुत पहिलेही यज्ञक्रिया नष्ट होजाती है; किंतु यज्ञसे उपजा हुआ, अपूर्व (पुण्य) ही स्वर्गके पूर्वतया तक रहता है। और "मुसलेनअवहन्याद्धान्यान्" यहां नियमविधि होती है; इसका अर्थ यह है, कि धान्यको मुसलसे कूटे, तो यह नियम किया, कि नखोंसे धान्यको फाड़कर यज्ञकेलिये तंडुल न निकाले। और सामान्यरूपसे सारे पदार्थों में प्राप्त नियम को थोड़े गिने हुए पदार्थोंमें नियम करना परिसंख्या कहाता है; जैसे कि पंच पंच नखाभक्ष्या क्योंकि इस वाक्यमें तव्य नामी कृत्य प्रत्यय है; इससे यह विधिवाक्य है। परंतु इसका अर्थ यह है, पांचनखोंवाले पांच जीव खा लेने चाहिये, पांच नखों वाले जीव खाने योग्य हैं; इतना कहनेसे सारे पांचनखों वाले जीव खानेके योग्य प्रतीत हुए; परंतु उसमें संख्या बांधी कि सहा, शल्लकी (सेह,) गोह, गैंडा और कछुआ, यही पांच पांचनखोंमें से खाने चाहिये; और नहीं, इसलिये इसे परिसंख्या विधि कहते हैं। अर्थवाद भी तीन प्रकारका है, जैसे गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद, इनमेंसे जिस वाक्यमें गौण शब्द हो, उसे गुणवाद कहते हैं, और अपने अर्थको छोड़कर अथवा अपने मुख्य (प्रधान) अर्थको पीछे करके जिस शब्द से अन्य अर्थका बोध हो, उसे गौण शब्द कहते हैं। जैसे कि सूर्य जिस यूप (खंभे) का देवता हो, उस यूप (खंभे) को सूर्य कहें, तो यह सूर्य शब्द अपने प्रधान अर्थ सूर्यको छोड़के खंभेको जनाता

है; इसलिये गौणहै। यह खंभे के जनाने वाला सूर्य पद
जिस वाक्यमें होगा; उसे गुणवाद कहतेहैं। किसी अन्य
प्रमाण से सिद्ध हुए पदार्थका जिस वाक्यसे बोध हो; उसे
अनुवाद कहतेहैं; जैसे अग्निर्हिमस्यभेषजम् अर्थात् आ
ग शीतका औषधहै; अब आग शीत को हटाता है; यह
अर्थ प्रत्यक्ष आदि कई प्रमाणोंसे सिद्धहै, इसलिये इस
अर्थके जनाने वाले वाक्य को अनुवाद कहेंगे। कोई ऐसा
भी कहते हैं; कि एक शब्दसे कहेहुए अर्थको किसी प्रयो
जनके लिये दूसरे शब्दसे कहना, भी अनुवाद कहाताहै।
जैसे कि पिछलेही उदाहरण में अग्नि शब्दसे वह्नि को ज
नाकर फिर उसी वह्निको हिमका औषध कहाहै; प्रयोज
न इसमें यहहै, कि आगसे सहज में शीत हट जाताहै; य
ह जनाना। और पुनरुक्ति वहहै, कि बिना प्रयोजन के
एकशब्द वा अर्थ कईवेर कह देना; जैसे कि कोई पुरुष
अनुमान का प्रयोग (उच्चारण) करने लगा; उसमें एक २
वेर प्रतिज्ञा आदि अवयवों का उच्चारण करनेसेही निर्वा
ह भलीभांति होजाताहै; फिर एक २ अवयव को दस २
वेर कहनेसे कुछ प्रयोजन नहीं सिद्ध होता, किंतु पुन
रुक्ति दोष से वक्ताकी अज्ञताही प्रकट होतीहै। यही पुन
रुक्ति और अनुवादमें अंतर है; कि अनुवादमें तो किसी
प्रयोजनसे एक अर्थ दोवेर कहाजाताहै; और पुनरुक्ति
में प्रयोजन के बिनाही एक अर्थ कई एक वेर कहनेमें
आताहै। जो अर्थ पहिले हो चुकाहो, अब वह चाहे नहीं
विद्यमान है; इस अर्थके जनाने वाला वाक्य भूतार्थ

वाद कहाता है, जैसे कि इंद्रका वर्णन करना वज्रह-
स्त अर्थात् वह इंद्र जिस के हाथमें वज्रथा, ऐसा नहीं
कि जिस समय इंद्रके हाथमें वज्रहो, उसी समय व-
ज्रहस्त कहना; किंतु पर्वत आदिके पंख काटनेके
लिये इंद्रने जबसे वज्रहाथ में पकड़ा है; तबसेलेक
र हाथमें चाहे वज्रहो, चाहे नहो, इंद्रको वज्रहस्त क
हने में कभी संदेह नहीं होता। इसीभांति एक बड़े वृ
द्ध पुरुषको कहना कि ये बड़े वीरहैं; अर्थात् पहिले
जवानी में ये बड़ेवीरथे,। अब बुढ़ापे में इनकी साम
र्थ्य चाहे कुछ भी नहींहै; किंतु बीती हुई जवानी की
वीरता लेकर बुढ़ापेमें वीर कहा, इससे यह भूतार्थवा
द है। और आपः पुनन्तु इत्यादि मंत्र प्रसिद्ध हैं, और लट्
लकारका वर्त्तमानत्व अर्थ है; जिस क्षणमें प्रयोग उच्चा-
रण किया जावे, उस क्षणके साथ पदार्थ का संबंधही व
र्त्तमानत्व लट् लकारका अर्थ है। वक्ताको जिस काल
का प्रत्यक्ष न हुआ हो; और पहिली रातके मध्यसे पहि-
ले २ जो बीतचुका हो, वह काल लिट् लकारका अर्थहै।
और आगे आने वाली पहिली रातिके मध्यसे अनंतर
जो समय आवेगा, वह लुट लकारका अर्थ है। और प्रयो
गके उच्चारण कालमें वर्त्तमान जो प्रागभाव उसके प्रति:
योगी को भविष्य कहतेहैं; अर्थात् जो समय अभी आगे
आवेगा उस समयको भविष्य कहते हैं; यह भविष्यत्व
लृट् लकारका अर्थहै। और वक्ताकी इच्छाका विषय
त्वही लोट् लकारका अर्थहै। और पीछे बीती हुई राति

ओं में से पहिली (जिस दिन प्रयोग कहा है उस दिनके समीपकी) रात्रिके मध्यभाग से पहिले २ जो समय बीत चुका है; यह लङ् लकारका अर्थ है। और लिङ् लकारके दो भेद हैं, विधिलिङ् और आशीर्लिङ्। इनमें से जो किसी बड़े दुःख (नरक) आदि अनिष्ट को न उपजावे, और यत्न से सिद्ध हो सके, वह विधिलिङ् का विषय (अर्थ) होता है। और वक्ता की इच्छा का विषय यजमान, पुत्र आदि का धन पुत्र आदि से बढ़ना अथवा घटना आशीर्लिङ् का अर्थ है। और प्रयोग के उच्चारण कालमें वर्तमान जो ध्वंस उसकी प्रतियोगिता भूतत्व कहाती है, यह भूतत्व लुङ् लकारका अर्थ है। और जहां एक पदार्थ से बिना दूसरा पदार्थ कभी न सिद्ध हो सके, वहां भविष्यत् कालका बोध लृङ् लकारसे होता है। और केवल वेदमें ही लेट लकारका प्रयोजन पड़ता है; लौकिक व्याकरणमें लेट् लकारका उपयोग कहीं नहीं पड़ता; इसलिये लेट् लकारका अर्थ नहीं लिखा। ये चार प्रकारके अनुभव जो वर्णन किये हैं; ये सब स्मृति (स्मरण) के कारण हैं; और इन अनुभवोंसे जो भावनानामी संस्कार उत्पन्न होता है; वह अनुभवका आधार और स्मृतिका कारण है। परन्तु इतना जानना चाहिये, कि इस भावनाको वही अनुभव उत्पन्न करेगा कि जिसमें कोई अपेक्षा (चाह) भी रहे, क्योंकि बजारमें जाकर मनुष्य लाखों पदार्थ देखता है तो अनुभव सभी का हुआ, परन्तु घरमें आकर विचारता है, तो संस्कार (भावना) चित्तमें उसी पदार्थ की रहती है;

कि जिससे कुछ अपेक्षाथी। और यहभी जानना, कि
अनुभवसे जिस वस्तुका संस्कार पक्काभी होजावे, तोभी
उस वस्तुका स्मरण सदाही नहीं होता, किंतु जब कोई उ
द्बोधक (स्मरण करानेवाले) मनुष्य वा किसी अन्य पदा
र्थका अनुभव हो, तो उस दृढ़ संस्कारसे स्मरण होताहै;
तो प्रतीत हुआ, कि उद्बोधकसे मिलाहुआ संस्कार स्मृ-
तिका कारणहै। एक और रीतिसेभी ग्रंथकार लोग बुद्धि
के विभाग करतेहैं; जैसा संपूर्ण बुद्धि पहिले दो प्रकारकी
हैं; सविकल्पक और निर्विकल्पक। जिस ज्ञानमें विशेष
ण, विशेष्य और संबंध ये सब जाने जावें, उसे सविकल्प
क ज्ञान कहतेहैं; और इस ज्ञानका मनके द्वारा प्रत्यक्षभी
होताहै; जैसाकि "यहांघटहै" इसज्ञानमें विशेष्य वह
देश जहांघटहै; विशेषण घट, और उसदेशमें घटका
संयोग संबंध ये सब प्रतीत होतेहैं; इससे यह ज्ञान सवि
कल्पक कहाजाताहै। और जिस ज्ञानमें विशेषण विशे
ष्य, और संबंध, इनमेंसे एकभी नमालूम पड़े; उसे नि
र्विकल्पक ज्ञान कहतेहैं। जैसाकि "कुछहै" इस ज्ञा
नमें विशेषण विशेष्य, और संबंध इन तीनोंमेंसे एक
भी नहीं प्रतीत होता, इससे यह ज्ञान निर्विक कहाताहै
इस ज्ञानका प्रत्यक्ष किसी इंद्रियसे भी नहीं होता, और
सविकल्पक ज्ञानभी दो भांतिकाहै, यथार्थ (प्रमा) और
अयथार्थ (अप्रमा) जो वस्तु जिसस्थानमें जिस संबंध-
सेहो, उसस्थानमें उसी संबंधसे उसवस्तुका जानना, य-
थार्थज्ञान कहाताहै। जैसाकि घट वाले देशमें संयोग

संबंधसे घटका जानना (यह देश संयोग संबंधसे घट
ज्ञानहै) यह यथार्थज्ञानहै। और अयथार्थ ज्ञानभी दो
भांतिकाहै, विपर्यय (भ्रम) और संशय (संदेह)। अन्य
वस्तु को अन्य समुझना, विपर्यय (भ्रम) होताहै। जैसा
कि दूरसे रज्जूकोटेढ़े पड़े देख और उसे सर्पजानकर ब
ड़ा डरताहै; परंतु यह ज्ञान निश्चय रूपहोताहै; नहीं तो
वह मनुष्य डरताना। निश्चय उस ज्ञानका नामहै, कि
जिसमें विना निषेध के एक पदार्थ प्रतीतहो; यह नि
श्चय यथार्थ भी होताहै। और अयथार्थभी होताहै। जै
से घट पड़ा ऊआ देखके, जानना कि यह घटहै, इसज्ञान
में यह निषेध नहीं है। कि "यह घट नहीं" इससे यह ज्ञा
न निश्चयहै; और इस ज्ञानसे घटको ही घट समुझाहै,
न किसी अन्यको घट जानाहै; इससे यह यथार्थभी ऊ
आ, तो मानो यह ज्ञान यथार्थ निश्चयहै। और जहां रज्जू
पड़ीहै, वहां ज्ञान ऊआ कि "यह सर्पहै" इस ज्ञानमें भी
यह निषेध नहीं कि "यह सांपनहीं" इससे यह निश्चय
ऊआ; परंतु रज्जू को सांप समुझाहै, इससे अयथार्थ भी
ऊआ, तो मानो अयथार्थ निश्चय इसे कहेंगे। और "जि
स ज्ञानमें एक वस्तु और उसी वस्तुका अभाव ये दोनो ए
क अन्य पदार्थ के विशेषण होजावें" उस ज्ञानको संश
य कहते हैं। जैसा किसानलोग मृगोंसे खेत बचानेके
लिये मनुष्यकी नाईं हाथ पांउ अंग जिसके मालूम प
ड़ें ऐसी लकड़ी बनाकर घास फूस उसके सिर पर पग
ड़ी की नाईं लपेटकर खेतमें गाड़ देतेहैं; कि जिससे

मृग सभ उसे मनुष्य जान कर दूरसे भाग जायें, और खे
तमें न घुसें। ऐसी लकड़ी को दूरसे देख कर किसी मनु
ष्यने सोचा; कि पगड़ी बांधे लंबी २ बाहू फैलाए क्या यह
कोई मनुष्य खड़ा है; परंतु यह हिलता चलता नहिं इस
से क्या यह कोई लकड़ी है, ऐसे अवसरमें जो उस मनुष्य
को ज्ञान होता है; कि "यह मनुष्य है वा नहिं" इस ज्ञानमें
मनुष्यत्व और मनुष्यत्वाभाव ये दोनों एक उस लकड़ीमें
विशेषण हैं; इससे यह संशय है। परंतु इतना जानना,
कि लकड़ीमें मनुष्यत्व का जानना अयथार्थ है। और
उसी लकड़ी में मनुष्यत्वाभाव का जानना यथार्थ है।
इससे सिद्ध हुआ, कि संशय ज्ञान नातो सारे अंशोंमें
यथार्थ होता है; और ना सारे अंशोंमें अयथार्थ होता है,
किंतु सर्वांशमें यथार्थ वा अयथार्थ जब होगा; तो नि
श्चयही होगा। और सभ ज्ञान के भेद यहां विस्तार के भ
यसे नहीं लिखे; केवल ईश्वरका ज्ञान नित्य है; और सब
ज्ञान अनित्य नाशक हैं॥ जो पदार्थ गंगास्नान, तीर्थया
त्रा, यज्ञ, तपस्या आदि उत्तम कर्मोंके व्यापार से उत्पन्न है,
और सबके चित्तको अनुकूल मालूम दे; उसे सुख कहते
हैं। और जो पापसे उत्पन्न किसी मनुष्यके चित्तको भी अ
च्छा न मालूम हो; उसे दुःख कहते हैं। और सिद्धांतमें
सुख और दुःख दोनों अनित्य हैं; किसी एक ग्रंथकार ने
नित्यसुख मानके उसी सुखकी प्राप्तिको मोक्ष माना है।
और दुःख सबके मतमें अनित्यही होता है;। और किसी
वस्तुकी अपेक्षा वा कामना (चाह) को इच्छा कहते हैं; औ

१ किसी कामके करने की इच्छाको चिकीर्षा कहते हैं; परंतु इस चिकीर्षा के दो कारण हैं। एक तो यह कि इस काम के करने से मेरा यह प्रयोजन सिद्ध होगा; इस प्रयोजन सिद्धि का जानना। दूसरा यह कि इस काम को मैं भलीभांति कर सकता हूं; इस अपनी सामर्थ्य का जानना। इन्हीं दोनों को शास्त्रकार "इष्टसाधनता ज्ञान" और "कृतिसाध्यता ज्ञान" भी कहते हैं। और यह भी जानना, कि यह दोनों ज्ञान केवल चिकीर्षा केही कारण नहीं, बरन कार्य्य मात्र के कारण ग्रंथकारों ने मानेहैं। और पानी को सोठे मारने की सामर्थ्य होती भी है; तो भी शिष्टलोग नहीं इस काम को करते; इसमें यही हेतु है, कि पानी को सोठा मारने से कुछ प्रयोजन नहीं सिद्ध होता, तो मानो इष्टसाधनताज्ञान नहीं रहा। इसी भांति सुमेरु (स्वर्णकापर्वत) के एक शिखर उखाड़ लानेमें प्रयोजन सिद्धिका ज्ञान हैभी; फिर महात्माकोई भी इस काम को करना नहीं चाहता; तो इसमें यही कारणहै, कि उस शिखर तक पहुंचने की सामर्थ्य किसी में नहीं, अर्थात् कृतिसाध्यताज्ञान नहीं रहा। तो सिद्ध यह हुआ कि इष्टसाधनताज्ञान, और कृतिसाध्यता ज्ञान ये दोनों जिस कार्यमें हों; उसी कार्यकी चिकीर्षा अर्थात् करने की इच्छा होतीहै। परंतु इतना स्मरण रहे, ये दोनों कारण रहें भी, और यदि द्विष्टसाधनताज्ञान साथ पड़जावे, अर्थात् ऐसा ज्ञान साथ पड़जावे, कि इस काम के करनेसे मुझे कोई बड़ा भारी दुःखप्राप्त होगा, तो कभी उसकाम को नहीं करेगा। और केवल ईश्वरकी इच्छा

एक नित्य है; और सब इच्छा अनित्य क्षणिक हैं। और जबको-
ई पदार्थ वा जीव अपने तईं दुःख देता है; तो उसपर जो क्रोध
आता है, और उस क्रोध से इच्छा उत्पन्न होती है; कि इसको
नाश करदें, वा इसको कभी आंख से नदेखें; इस क्रोधको
द्वेष कहते हैं। और अभ्यास को यत्न कहते हैं, वह तीन
प्रकार से बांटा है, जैसे प्रवृत्ति, निवृत्ति, जीवनयोनि, और
इष्टसाधनताज्ञान, कृतिसाध्यताज्ञान, चिकीर्षा, कार्यकी
कारणसामग्री का प्रत्यक्ष, ये सब कारण हों, तो प्रवृत्ति हो-
ती है। और द्वेषसे वा दुःखसाधनताज्ञानसे निवृत्ति होजा-
ती है; और शरीरमें प्राणवायुके चलाने द्वारा जीवन योनि
यत्न है; इस तीसरे यत्नका प्रत्यक्ष कभी नहीं होता; केवल
ईश्वरका यत्न नित्य है, और सब अनित्य हैं। और जिस गु-
णसे पदार्थ नीचे को गिरता है; अर्थात् पृथ्वीके गुरुत्व केंद्र
की ओर खिंचा रहता है, उस गुणको गुरुत्व कहते हैं। और
यह गुरुत्व पृथ्वी, जल इन्हीं दोनोंमें रहता है; परंतु इन दो-
नोंके परमाणुओंमें नित्य होता है; और सारे अनित्य होते
हैं। और जिस गुण से वस्तुका पिंड बन जाता है, और जिस
गुणके संबंधसे मूली स्याही आदि बहने लगती है; उस गु-
ण को द्रवत्व कहते हैं। यह द्रवत्व पृथ्वी, जल, तेज इन ती-
नोंमें रहता है; और इस द्रवत्वके दो भेद हैं; एक सांसिद्धि-
क द्रवत्व अर्थात् आपसे आप बिना किसी उपायके अपने
समवायि कारण में उपजा हुआ। यह सांसिद्धिक द्रवत्व के-
वल जलमेंही रहता है; यह बात प्रगट है कि जल के फैला-
नेमें कभी किसीने उद्योग नहीं किया; क्योंकि वह आपसे

आपही ढलाहै। इसीसे पानीके द्रवत्व को सांसिद्धिक द्रवत्व कहतेहैं, यह द्रवत्व जलके परमाणुमें ही नित्य होता है; और अनित्य जलमें अनित्य होताहै। और दूसरा नैमित्तिक द्रवत्व अर्थात् किसी निमित्त से उपजा हुआ, जैसा कि चांदी, स्वर्ण, लाख, आदि वस्तुओंमें अग्निके संबंध सेऔर सुहागा आदिके डारने से जो द्रवत्व उत्पन्न होता है; उसकी उत्पत्तिमें आग, और सुहागा आदि निमित्त हैं; इससे इसको नैमित्तिक द्रवत्व कहते हैं। यह नैमित्तिकद्रवत्व पृथ्वी और तेज इन दोनों में रहताहै; परंतु सारे स्थानोंमें यह अनित्य होता है, नित्य कहीं नहीं होता। और चिकनाई को स्नेह कहतेहैं; यह गुण भी सूखी वस्तु के पिंड बांधने में असमवायिकारणहै। और यह गुण केवल जलमें ही रहता है, परंतु जलके परमाणुमें स्नेह नित्य होताहै; और सब स्नेह अनित्य होताहै; इसी स्नेह की अधिकतासे तेल अग्नि के अनुकूल होजाता है। और संस्कार के तीन भेद हैं, वेग, स्थितिस्थापक, भावना इन तीनोंमें से वेगनामी संस्कार पृथ्वी जल, तेज, वायु, मन, इन पांच द्रव्योंमें ही रहताहै; कर्म से और वेगसे उत्पन्न होताहै, नित्य कहीं नहीं होता। और स्थितिस्थापक संस्कार सिद्धांतमें जोपृथ्वीमेंही रहता है; और अनित्य होता है। कोई आचार्य कहते हैं, कि स्थितिस्थापक संस्कार पृथ्वी, जल, तेज, और वायु इन चारोंमें रहताहै; और जब किसी वृक्षकी शाखा को खैंचके अपनी ओर झुकाय लें; औरफिर छोड़ दें, तो वह शाखा वहांही जा ठहरेगी, कि जहां पहिले खड़ीथी।

तो जो गुण उस शाखाको सब स्थानोंसे हटा कर उसी प्रथम स्थान परलेजा ठहराता है; उसे स्थितिस्थापक संस्कार कहते हैं। और भावना नामी संस्कार जीवात्मा में रहता है, और अनित्य होताहै, अनुभव से उत्पन्न होताहै, स्मृति का कारण है, और किसी बड़े रोगसे वा बहुत कालसे वा सारे प्रयोजनकी सिद्धिसे संस्कार नष्ट होजाता है। कोई मनुष्य काशीमें तीर्थ यात्रा करने गया, वहां उसकी एक महात्मा से मैत्री होगई, फिर वह यात्रा करके अपने गृहको चला आया। समीप दशवर्षके समय व्यतीत हुआ होगा; कि दैवाधीन वे महात्मा इस ब्राह्मणके नगरमें आए, उन्हें देखते ही इस ब्राह्मण को बड़ा आनंद हुआ; और उसी समय में उसे विश्वेश्वरनाथ, काशीनगर, और उस महात्माके रहनेका स्थान, और सारे काशीके स्थान, इन सब का स्मरण हुआ; इस स्मरण का कारण भावनाख्य संस्कार होताहै और यह बात सारे लोगों में प्रसिद्ध है, कि चार प्रकारके अनुभव में से एक प्रकारका अनुभव भी जिस वस्तुका हो जावे; तो उसी वस्तुका - स्मरण होताहै। अर्थात् विना अनुभवके स्मरण कभी नहीं होता, तो सिद्ध हुआ, कि स्मरणका कारण अनुभव है; परंतु कारण उसे कहते हैं, कि जो अव्यवहित पूर्वक्षण में रहे, और ज्ञान मात्र दो वा तीन क्षण तक ही रहता है; फिर नष्ट होजाता है तो काशीका अनुभव किये दशवर्ष होचुके; आज काशीका स्मरण न होनाचाहिये; जिस्से स्मृतिका कारण अनुभव कभी का नष्ट

हो गया; और विना कारण के कार्य कभी नहीं उत्पन्न होता। इससे अनुभवका आधार भावना नामी एक संस्कार मानते हैं; जबतक यह संस्कार बना रहता है; तबतक उस संस्कारके द्वारा मानो अनुभवही बना है। परंतु संस्कार चाहे सदा बना भी रहे; तोभी स्मरण सदा नहीं होता, किंतु जब कोई उद्बोधक पदार्थ सामने आवे, तो यह संस्कार उसी क्षणमें स्मरण करादेता है। और यह बात भी अवश्य जाननी चाहिये, कि सारे अनुभवोंसे यह संस्कार नहीं उत्पन्न होता, किंतु जिस वस्तुसे अपना प्रयोजन कुछ सिद्ध होवे; उस वस्तुका अनुभव इस भावना नामी संस्कारका कारण है; यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है, कि जब कोई मनुष्य किसी नये नगरमें जाता, तो प्राय: उस नगरके सारे पदार्थोंका अनुभव उसे होजाता है; परंतु पीछेसे स्मरण उन २ वस्तुओंकाही होता है कि जिनसे कुछ प्रयोजनहो; औरोंका स्मरण कहे परभी नहीं होता। परंतु इस भावनाख्य संस्कारका प्रत्यक्ष भी नहीं होता। और धर्म, अधर्म इन दोनोंका नाम अदृष्ट है; पुण्य, पापभी इन्हीं दोनोंका नाम है; इन दोनोंमेंसे धर्म दो प्रकारका है; एकतो ऐश्वर्यका वा स्वर्गका हेतु, जो तीर्थयात्रा, अश्वमेध आदि यज्ञ, तपस्या आदि से उत्पन्न होता है। और दूसरा मुक्तिका कारण जो योगाभ्यास समाधि से वा तत्वज्ञानसे उत्पन्न होता है। और वेद धर्म्मशास्त्र से विरुद्ध कर्म्म करने से पाप नामी अदृष्ट उत्पन्न होताहै; जिससे जीव नरक में जा

गिरता है; और वहां अनेक पीड़ाओं को सहता है; ये दोनों धर्म और अधर्म केवल जीवात्मा में ही रहते हैं; और अनित्य हैं। इन दोनोंका प्रत्यक्ष भी कभी नहीं होता; और कोई २ ग्रंथकार इन दोनोंको अदृष्ट भी कहते हैं; और यह भी जानना कि कर्मनाशा नदीके जल छूनेसे गंडकी (शालिग्रामी) नदीमें तरने से करतोया (सिंधु वा अटक) नदीके लंघने से और ऊंट पर चढ़ना इत्यादि कई निमित्तोंसे धर्म और प्रायश्चित्त, तीर्थ यात्रा आदि कई निमित्तोंसे पाप नष्ट होजाता है। और तत्वज्ञानसे धर्म अधर्म दोनों नष्ट होजाते हैं; शास्त्रकारोंने माना है, कि धर्म अधर्म इन दोनोंसे ही जीवको ऐसे बंधन पड़ जाते हैं; कि जिनसे छूटना बड़ा कठिन होजाता है; तो बंधनों को काटने के हेतु सारे शास्त्रकार प्रवृत्त हुए हैं। और जिस गुण का श्रोत्र (कान) से प्रत्यक्ष होता है; उसे शब्द कहते हैं। यह शब्द केवल आकाशमें ही रहता है, अनित्य है, यह शब्द दो संज्ञाओंसे बंटा है; ध्वनि, और वर्ण। जो मृदंग, वंसी, सितार, बेहला आदिका शब्द हो, उसे ध्वनि कहते हैं। और कंठ तालु आदि स्थानोंमें वायुके संयोग से जो अक्षर उत्पन्न होते हैं; उन्हें वर्ण कहते हैं। जैसे जलमें कोई वस्तु गिरे तो पहिले एक छोटासा गोल वृत्त बन जाता है; फिर शीघ्रही वह छोटा वृत्त मिटजाता है, और एक बड़ा वृत्त बन जाता है। इसी भांति छोटे २ वृत्त नष्ट होते जाते हैं, और बड़े २ वृत्त तबतक उत्पन्न होते जाते हैं [illegible]

हम म उत्पन्न होलेवे; कि जो उस जलाशय के तटोंसे आ टकरे। इसी भांति नोय आदिमें पहिले जब अग्नि आदि की क्रियासे अभिघात होताहै; तो एक छोटा शब्द उत्पन्न होताहै, दूसरे क्षणमें वह शब्द स्थित होताहै, और उससे बड़ा एक शब्द उत्पन्न होताहै; तीसरे क्षणमें पहिला शब्द नष्ट होजाताहै, और दूसरा शब्द स्थित होताहै, और दूसरे से बड़ा तीसरा शब्द उत्पन्न होताहै। इसी रीति बड़े से बड़े शब्द तब तक उत्पन्न होते जाते हैं; कि जहांतक उस अभिघात की सामर्थ्य होतीहै। और यह भी जानना कि यह शब्दका तरंग जिस क्रमसे जिस २ पुरुषके कानतक पहुंचताहै; उसी क्रम से उन २ पुरुषों को प्रत्यक्ष होताहै। अर्थात् जिस स्थानमे शब्द उत्पन्न हो, उस स्थानसे जो समीप हो, उन्हें दूर वालेकी अपेक्षा पहिले वह शब्द सुननेमें आवेगा; और समीप वाले की अपेक्षा पीछे से दूरवाला उस शब्दको सुनेगा। इस विचारसे सिद्ध हुआ; कि पहिला शब्द दूसरे शब्दका कारण है; और दूसराशब्द पहिले शब्द के नाशका कारण होताहै। परंतु सबसे पिछला शब्द अपने समीप रहने वाले पहिले शब्दका नाश करताहै; और वह पहिला (उपांत्य) शब्द अंतिम शब्द का नाश करता है। इसे सुंदोपसुंदन्याय भी ग्रंथकार लोग कहते हैं; अर्थात् सुंद और उपसुंद दोनों भाई थे, दोनोंने एक दूसरे को आपस में ऐसी तरवार चलाई; कि दोनों एक समय में ही कट गये। और वही यह कारकार है, जो पहिले दिन तुम्हें बता-

या था; ऐसी २ प्रतीतिओंसे कई लोग शद्को नित्यभी मानते हैं; परंतु सिद्धांत में शद् अनित्यही है। क्योंकि पत्रा पर लिखादेखके जो कहा जाय; कि यह वही अक्षरहै, तो वहां उसे शद् नहीं जानना चाहिये; जिससे शद् आंखसे कभी नहीं दीखता; किंतु उसे शद्के स्मरण करानेवाला, स्याही से बना हुआ, पार्थिव पदार्थ जानना चाहिये। और जो कहे कि यह वही अक्षर सुनाहै; जो पहिले दिन सुनाथा, तो यहां भी वही अक्षर नहीं है; किंतु पहिले दिन जो अक्षर सुनाथा, उसमें जो जातिथी इस अक्षर में भी वही जातिहै; यह तात्पर्य है। जैसा कि कोई मनुष्य किसी एक अपने रोगके हटाने वास्ते औषध खाताहै; कई दिन बीत चुके, तो उसे औषध खाते देखके किसीने पूछा, आप क्या खाते हैं; यह सुनके उसने उत्तर दिया; कि मैं वही औषध खाताहूं; जो उस दिन आप के सामने खाईथी, यह उत्तर सुनके उसने मनमें सोचा, कि वह औषध तो इसने मेरे सामनेही उस दिन खालीथी; आज फिर वही औषध इसके पास कहांसे आगई। कि यह उसेही खारहाहै, और मेरेसाथ यह मनुष्य झूठ भी कभी नहीं बोला; किंतु उस दिनजो औषध इसने खायाथा; उसका सजातीय अर्थात् साथका औषध है। इसीरीति शद्में भी सजातीय का बोध जानना। शद् वायु आदिका गुण नहीं (किंतु आकाशका ही गुण है, । यह बात आकाशकी सिद्धि में भली भांति खोलके लिखी गई है) और यह भी जानना चा-

हिये, कि कई लोग आशंका करते हैं; कि जब यत्न एक गुण माना है, तो उसके साथ आलस्य भी एक जुदा गुण मानना चाहिये। और गुरुत्व के साथ लघुत्व भी एक भिन्न गुण मानना चाहिये; फिर चौवीस गुण कैसे कहे। इसका उत्तर यह है, कि आलस्य और लघुत्व गुण पदार्थ नहीं हैं; किंतु अभाव पदार्थ हैं। यत्नाभाव को आलस्य और गुरुत्वाभाव को लघुत्व कहते हैं; परंतु आलसी व्यवहार घट पट आदि जड़ पदार्थोंमें कहीं नहीं होता; किंतु जीवोंमें ही होता है, और तुमने जो आलस्य माना है, यत्नाभाव वह तो घट पट आदि सारे जड़ों में भी रहगया; तो वह घट वा पट आलसी है, यह व्यवहार होना चाहिये। इससे ज्ञानके अधिकरण में रहने वाले यत्नाभाव को आलस्य जानना; इससे जड़ पदार्थोंमें यत्नाभाव रहा भी तो उनमें आलसी व्यवहार नहीं होगा; क्योंकि वे ज्ञान के अधिकरण नहीं हैं। इसी भांति गुरुत्वाभाव गुणआदि पदार्थोंमें रहे भी तो यह गुण लघु है; वा आकाश लघु है, यह व्यवहार कभी नहीं होगा, क्योंकि इसके अधिकरणमें रहने वाले गुरुत्वाभाव को लघुत्व कहते हैं, तो आकाशमें वा गुणआदिकों में इस नहीं रहता, इससे गुरुत्वाभाव आकाश आदिमें रहा भी तो आकाश लघु है; गुण लघु है, ऐसे २ अयोग्य व्यवहार नहीं होंगे ॥ कर्म और क्रिया एकही पदार्थ है; उर्दू भाषा में क्रियाको हरकत कहते हैं। जिस वस्तु का किसी एक देशमें संयोग बना है, उस देशसे उस वस्तु को हटाके अर्थात उसदेशसे संयोग उस वस्तु का हटा (नष्ट) करके और देशसे उस वस्तु का

संयोग जो पदार्थ करा दे; उस पदार्थको कर्म कहते हैं। जैसा कि एक कीट बैठा हुआ, किसी मीठी वस्तु को खारहा था; कि एक मनुष्य ने आके उसे डराकर भगादिया। जब उस वस्तुको मुंहमें लिये वह कीट वहांसे चला; अर्थात् जब उसने क्रिया की, तो जहां बैठाथा, उस देश से विभाग (अलग) पहिले हुआ; फिर उस देशके संयोगका नाश हुआ; और दूसरे देश से संयोग होजाता है। इसी भांति जब तक क्रिया होतीजाय, तबतक पूर्व २ संयोगका नाश और उत्त २ संयोगकी उत्पत्ति होतीजाती है। ये सब कर्म पृथ्वी; जल, तेज, वायु, और मन, इन्हीं पांचों द्रव्योंमें रहतेहैं। और पृथ्वी के गुरुत्वकेंद्र की ओर जो दिक है; उसे अधो देश वा नीचेका देश कहतेहैं। और उस गुरुत्वकेंद्रके विरुद्ध जो दिक हो उसे ऊर्द्ध देश वा ऊंचा कहते हैं। और एक वस्तु को ऊर्द्धदेशसे संयोग कराने वाली जो क्रिया उस क्रियाकी हेतु जो क्रिया उसे उत्क्षेपण कहते हैं। जैसा एक घट चैत्रने ऊपर फेंका, तो ऊपरके देशसे घटका जो संयोग हुआ; उस संयोग का कारण घटकी क्रियाहै, और घट की क्रियाका कारण चैत्रकी क्रिया है। इस चैत्रकी क्रिया को उत्क्षेपण कहतेहैं। इसीभांति अधोदेशके संयोगकी कारण जो क्रिया इस क्रिया की कारण जो क्रिया उसे अपक्षेपण कहते हैं। जैसा कि मैत्रने पत्थर नीचे फेंका, यहां पत्थर का जो नीचे संयोग हुआ, उसकी हेतु पत्थर की क्रियाहै; और इस पत्थरकी क्रिया में मैत्र की क्रिया हेतुहै; इस मैत्रकी क्रियाको अपक्षेपण (नीचे फेंकना) कहतेहैं। और मूर्त्त पदार्थोंकी संज्ञा देश है; कोई

ग्रंथकार केवल अनित्य मूर्तोंको देश कहते हैं, और कोई नित्य अनित्य सारे मूर्तों को देश कहते हैं। इससे दूर और समीप इन दो शब्दोंका अर्थ समुझने में आगया; जिसस्थान से एक वस्तुतक जितने देश (मूर्तद्रव्य) का अंतर हो, उस अंतर से जिस और वस्तुका अंतर अधिक हो; वह वस्तु पहिली वस्तु की अपेक्षा उस स्थान से दूर कहाती है। और उसी स्थानसे उस एक वस्तुके अंतर से जिस पदार्थ का अंतर (बीचकामूर्तद्रव्य) थोड़ा हो; वह पदार्थ उस एक वस्तुकी अपेक्षा उस स्थान से समीप कहाता है। तो अपने समीप देशसे संयोगकी हेतु जो क्रिया इस क्रियाकी कारण क्रिया आकुंचन कहाती है, जैसा कि चैत्रने कपड़ा अपनी ओर खेंचा; यहां अपने समीप देशसे कपड़े के संयोग की हेतु कपड़े की क्रिया है; और यह वस्त्र की क्रिया चैत्र की क्रिया से उत्पन्न हुई है; इससे चैत्र की क्रिया को आकुंचन (अपनी ओर खैंचना) कहते हैं। और शरीर से दूरदेश के साथ संयोगकी कारण जो क्रिया उसकी कारण क्रिया को प्रसारण कहते हैं, जैसा कि मैत्र ने कपड़ा फैलाया, यहां दूर देशसे संयोगकी कारण कपड़ेकी क्रिया है; और कपड़े की क्रिया में मैत्रकी क्रिया कारण है; इससे मैत्रकी क्रिया को प्रसारण (फैलाना) कहते हैं। और संयुक्त देशसे विभाग करा के अन्य देशसेजो संयोगकरादे उसे गमन कहते हैं; जैसा कि कोई मनुष्य भव कहींसे चलने लगता है; तो पहिले उसके शरीर में क्रिया होती है; फिर पूर्व देशसे विभाग और पहिले संयोगका नाश और उत्तर देशसे संयोग होता है; इसक्रिया को गमन ॰

(चलना) करते हैं। और भ्रमण (चक्रका चलना) रेचन (श्वासका चलना) स्पंदन (बहुतथोड़ा चलना) अर्थात् कांपना, ऊर्द्धज्वलन (ऊपरकोही जाना) जैसा कि आगकी चोटी केवल ऊपर को ही जाती किसी और और नहीं जाती और तिर्यग्गमन (टेढ़ाचलना) जैसा कि सांप वा वायु चलता है। ये पांचो भी गमन केही भेद हैं; इसलिये उन्हें नहीं लिखे। और उत्क्षेपण आदि चारो भी उत्तर देशके साथ संयोग करादेते हैं, इससे चाहे गमन में ही अंतर्गत हो सकते हैं; तो भी उत्क्षेपण आदि साक्षात् उत्तर संयोगके कारण नहीं हैं; किंतु उत्क्षेपण आदि क्रिया ओंसे एक और क्रिया उत्पन्न होती है; वह क्रिया उत्तर संयोगको उत्पन्न करती है; तो उत्क्षेपण क्रिया उस दूसरी क्रियाकी हेतु हुई उत्तर संयोगकी हेतु नहीं, किंतु उत्तरसंयोग की हेतु वह दूसरी क्रिया हुई; जो उत्क्षेपण आदिसे उत्पन्न हुई है; तो उसे गमन के अंतर्गत मानलो; उत्क्षेपण आदिक तो गमन में नहीं आसकते; इससे भिन्न लिखे हैं। और भ्रमण आदि सब साक्षात् उत्तर संयोग के कारण हैं; तो मानो गमनही हुए, इससे पृथक् नहीं लिखे॥ जहां एक घट पड़ा है, वहां बहुतसी प्रतीति होती हैं, जैसा कि "यह घट है" "यह पृथ्वी है" "यह द्रव्य है" "यह प्रमेय है" "यह भाव है" "यह पदार्थ है" ऐसी २ और भी तो वहां घट एकही है, इन प्रतीति ओंका परस्पर भेद किस हेतुसे होता है; इस भेद को युक्त करने के लिये धर्म सब प्रतीतिओं के भेदक ग्रंथकारोंने माने हैं। अर्थात् जब उसी पदार्थ का घट-

त्व रूपसे ज्ञान हुआ; तो यह घट है, ऐसी प्रतीति हुई, औ-
र जब उसी पदार्थ का पृथिवीत्व रूपसे ज्ञान हुआ, तो यह
पृथिवी है, ऐसी प्रतीति हुई, इसी भांति जिस धर्मसे जोव-
स्तु जानीजावे; उसी धर्मसे वहांवस्तुका ज्ञान (प्रतीति)
होता है। अर्थात् वह पदार्थ चाहे एकही है; परंतु उस
पदार्थ में धर्म बहुत हैं; उन धर्मोंके भेदसेही प्रतीतियों-
का भेद होता है। और इन धर्मोंके भी दो भेद हैं; एक वे
जो किसी कार्य में इस भांति रहें; कि उस नाम के सारे
कार्योंमे रहें; और उस से भिन्न में किसीमें न रहें। जैसा
कि घटत्व सारे घट कार्यों में रहताहै; और घट से अति-
रिक्त में कहीं नहीं रहता। और दूसरे वे जो किसी कार-
ण में इसी भांति रहें; कि उस नामके सारे कारणों में रहें,
और उस कारण से अतिरिक्त किसी पदार्थ में न रहें। जै-
सा कि द्रव्यत्व समवायि कारण नामी सारे द्रव्यों में रहता-
है; और द्रव्य से अतिरिक्त किसी पदार्थ में नहीं रहता। ये
दोनों भांतिके धर्म जाति कहाते हैं; और इन दो नियमों
में से एक भी कोई नियम जिनमें संगत न होसके; वे धर्म
उपाधि कहाते हैं। इन उपाधि नामी धर्मोंके भी दो भेद हैं;
एक वह जो बहुत पदार्थों से बनाहो; जैसा कि "पशुत्व"
इस में रोम और रोमों की अधिकरणता, पुच्छ, और पुच्छ
की अधिकरणता, ये सब पदार्थ मिले हुए हैं; तो पशुत्व
धर्म बनाहै; अर्थात् "जिसकी पूछ पर रोम उगे हों" उसे
पशु कहते हैं, पशुके लक्षणसे प्रतीत हुआ, कि रोम वा-
ली पुच्छ का नाम पशुत्व है। ऐसे २ धर्मोंको ग्रंथकार

लोग सखंडोपाधि कहते हैं। और दूसरे वे जिनका पूरा २ वर्णन कुछ नहोसके; जैसा कि अधिकरणतात्व, अवच्छेदकतात्व, इत्यादि धर्मोंका पूरा २ वर्णन अर्थात् लक्षण कुछ नहीं होसकता; ऐसे २ धर्मोंको अखंडोपाधि कहते हैं। इन जातियों का वा उपाधियोंका कहीं तो त्व प्रत्यय से ज्ञान होताहै; जैसा कि घटत्व, अभावत्व, आदि। और कहीं तल प्रत्यय से ज्ञान होताहै; जैसाकि सत्ता, अन्यता आदि। और कहीं २ ष्यञ् प्रत्यय से भी बोध होता है; जैसा कि प्राधान्य, सामानाधिकरण्य, आदि। और जाति का लक्षण यह है; कि जो धर्म नित्य हो, और समवाय संबंध से बहुत पदार्थोंमें रहे, उसे जाति कहते हैं। जैसा कि घटत्व धर्म न उत्पन्न होताहै, और न नष्ट होता है; इससे नित्यहै, और समवाय संबंधसे सारे घटों में रहताहै; इससे जाति है। और जो धर्मकेवल एक व्यक्तिमेंही रहे, उसे जाति नहीं कहना। किंतु उपाधि कहना, जैसा कि आकाशत्व, ईश्वरत्व आदि आकाशत्व केवल आकाशमें रहताहै; और आकाश सब स्थानमें एकहै; इससे आकाशत्व उपाधिहै। इसी भांति ईश्वरत्व जिसमें रहताहै, वह ईश्वर भी एकहीहै, तो ईश्वरत्व भी उपाधि हुआ। और जो दो धर्म तुल्य देशमें रहें वे दोनों नहीं जाति कहा सकते; किंतु एक जाति और दूसरा उपाधि होताहै। जैसा कि घटत्व और कलशत्व ये दोनों सारे घटोंमें ही रहते हैं; इसलिये जब घटत्व जाति है, तो कलशत्व नहीं जातिहै। और जो ऐसे दो धर्म हों, कि एक धर्मसे न्यून स्थान में दूसरा धर्म रहे, और दूसरे ध

मेंसे शून्य स्थानमें पहिला धर्म रहे; और वे दोनों धर्म क
हीं इकट्ठे रहजावें; वे दोनों धर्म इसी संकर दोषसे जाति
नहीं हैं। जैसे भूतत्व और मूर्त्तत्व क्योंकि भूतत्व से शून्यम
नमें मूर्त्तत्व और मूर्त्तत्वसे शून्य आकाश में भूतत्व रहता है
और पृथिवी आदि चार द्रव्योंमें येदोनोंधर्म इकट्ठे रहते हैं;
इससे भूतत्व, मूर्त्तत्व ये दोनों जाति नहीं हैं। और जाति
में जाति नहीं रहती, यदि जाति में जाती रहे तो उसमें भी
जाति एक रहेगी; और उसमें भी एक जाति रहेगी तो क
हीं भी न ठहरने से अनवस्था हो जावेगी; इस दोषसे जा
तिमें जाति नहीं माननी। तो सिद्ध हुआ, कि सामान्य में
सामान्यत्व नहीं जाति, और परमाणुओंका परस्पर भेद
सिद्ध करनेके लिये विशेषनामा भिन्न पदार्थ माना है;
परंतु जिस पदार्थ में जाति रहती है; वह जाति उस पदार्थ
को अन्य पदार्थोंसे भेद करादेती है; इससे विशेषमें विशे
षत्व जाति यदि माने, तो अन्य पदार्थों से यही जाति विशे-
ष का भेद करा देवेगी. तो यह विशेष अन्य पदार्थों सेय
दि अपना भेदही न करा सकेगा; तो परमाणुओंका भेद
इसने कराना, यह बात सर्वथा असंभव के समान है।
इससे यही जानना, कि विशेषमें विशेषत्व जाति नहीं है;
किंतु सखंडोपाधि है; विशेषका लक्षण यह है कि जो अ
न्य पदार्थोंसे अपना भेद आप सिद्ध करादेवे; उसे विशे-
ष कहते हैं, यही अपने आपको और पदार्थों से आपही
भेद कराना, विशेषत्व कहाता है; और यहभी जानना,
कि जाति वहां ही रहेगी, कि जो पदार्थ समवाय संबंध

से कहीं रहे, वा जिसमें समवाय संबंधसे कोई पदार्थ र-
हे. और समवाय, अभाव ये दो पदार्थ न तो समवाय संबं
धसे कहीं रहतेहैं; और न इनमें कोई पदार्थ समवाय
संबंध से रहताहै; इससे समवायत्व और अभावत्व ये
दोनों जाति नहीं; किंतु उपाधि परंतु सखंडोपाधिहै और
र। परमाणु आदि नित्य द्रव्योंमें चाहे रूप आदि गुण र-
हतेहैं: परंतु उनका परस्पर भेद रूपत्वआदि जातियें
करातीहैं; इस से वे गुण भी परमाणुओं का परस्पर भे
द नहीं करा सकते। और रूपत्व आदि जातियें तो परमा
णुओंमें रहती ही नहीं हैं; तो उनका भेद क्या करावेंगी,
और महत्व (बड़े परिमाण) के न होनेसे परमाणुओंका
प्रत्यक्ष भी नहीं होता, कि प्रत्यक्ष से उनका भेद सिद्ध क
रें, इसलिये परमाणुओंका भेद सिद्ध करने के लिये
विशेष नामी ऐसा एक भिन्न पदार्थ माना है; कि जो
अपना भेद आप सिद्ध करसके॥ और जिस ज्ञान में वि-
शेषण, विशेष्य की प्रतीति होतीहै: वहां विशेषण का
विशेष्यसे संबंध भी अवश्य प्रतीत होताहै; जैसा कि "
यह दंडी मनुष्यहै इस ज्ञानमें दंड विशेषण और मनुष्य
विशेष्य है. और इन दोनों का संबंध संयोगहै; यदि वह दं
ड समीप पड़ा भी रहे. पर वह मनुष्य उस दंड से छूए ना,
तो "यह दंडी मनुष्यहै" ऐसी प्रतीति कभी नहीं होती;
किंतु छूने सेही ऐसी विशिष्टबुद्धि होती है; तो सिद्ध हु-
आ, कि संबंधसे विना विशिष्टबुद्धि कभी नहीं होती:
और इसी भांति इस घट में नीलरूपहै; इस प्रतीतिमें ∴

नीलरूप विशेषण और घट विशेष्य है; इन दोनों का संबंध कोई अवश्य होना चाहिये। परंतु संयोग संबंध नहीं हो सकता, क्योंकि संयोग जिन दो पदार्थों का होताहै, वह संयोग उन दोनोंमें रहता है; और यहां विशेषण तो गुण है, और विशेष्य द्रव्यहै, यदि इनका संयोग हो, तो वह इन दोनों में रहेगा; परंतु गुणआदि कोंमें गुण कोई नहीं रहता, इसलिये नीलरूप संयोग संबंध से कहीं भी नहीं रहसकता; तो द्रव्य में किस भांति रहेगा, और बिना किसी संबंधके "नीलरूपवान्घटः" यह विशिष्टबुद्धि कभी नहीं हो सकती, क्योंकि संबंधका सामान्य लक्षण यहीहै; "विशिष्टबुद्धिजनकत्व" अर्थात् जिस के बिना विशिष्टबुद्धि कभी न हो, और जिस से विशिष्टबुद्धि हो, उस संबंध कहतेहैं। जैसा कि पीछे उपपन्न भी करआए हैं; कि जबतक पुरुषके साथ दंडका संयोग नहो, अर्थात् जबतक वह पुरुष दंडको हाथसे न पकड़ले; तबतक "दंडीपुरुषः" यह विशिष्टबुद्धि नहीं होती; और जब वह पुरुष हाथ से दंडको छूता उसी समय से दंडीपुरुषः यह विशिष्टबुद्धि होने लगती है। इस से सिद्ध हुआ, कि विशिष्टबुद्धि का नियामक संबंधही है, परंतु नीलरूपवान्घटः यह विशिष्ट बुद्धि संयोग संबंध से नहीं होती; यह तो पीछे सिद्ध कर ही चुके हैं, यदि इस विशिष्टबुद्धिका नियामक स्वरूप संबंध मानें, तो वह भी नहीं बनता, क्योंकि प्रतियोगी का स्वरूप मानोगे, अथवा अनुयोगीका। इसका खंडन करने के अर्थ प्रतियोगी और अनुयोगी का अर्थ खोलकर लिखते हैं; जिस संब-

धसे जो पदार्थ रहे वह पदार्थ उस संबंधका प्रतियोगी कहा ताहै; अथवा वह पदार्थ उस संबंधसे आधेय होताहै, और जिस संबंध से कोई पदार्थ जिस स्थान में रहे; वह स्थान उस संबंधका अनुयोगी होताहै; अथवा वह स्थान उस संबंधसे उस आधेय का आधार कहाता है; जो स्वरूप संबंध यदि प्रतियोगी को कहें, तब घट पट आदि इतने पदार्थ आधेय हैं; कि जिनकी संख्या भी नहीं मालूम होसकती, इसलिये असंख्य स्वरूप संबंधका मानना एक वितंडा के तुल्य अप्रमाण है; इसी भांति आधार को स्वरूप संबंध माने तो घट पट आदि आधार भी इतने हैं, कि जिनकी संख्या नहीं होसकती, तो इसका मानना भी वितंडा केही तुल्य है, इससे सिद्धांत यह निकला, कि सारे जगत में एक समवाय संबंध मानने सेही निर्वाह होजावे, तो जिसकी संख्या ही नहीं होसकती, ऐसे स्वरूप संबंधका मानना सर्वथा अयुक्त है। और प्रतियोगी अथवा अनुयोगीको स्वरूप संबंध मानने से यह एक बड़ा दोष पड़ताहै; कि प्रायश: प्रतियोगी अथवा अनुयोगी अनित्य भी हैं, तो मानो स्वरूप संबंधही अनित्य हुआ, इसलिये उसकी "उत्पत्ति विनाश ध्वंस, प्रागभाव, अवयव (हिस्से) और अवयवोंके ध्वंस, प्रागभाव" इत्यादि अनेक कल्पना करनी पड़ेगी; यदि सारे जगत् में एक और नित्य समवाय संबंध मानने से निर्वाह हो जावे; तो ये सब कल्पना और इनके मूल स्वरूप संबंधका मानना सर्वथा अयुक्त और अप्रमाण है। सो इससे सिद्ध हुआ, कि "नीलरूपवान् घट:" यह विशिष्टबुद्धि स्वरूपसे

बंधसे भी नहीं होसकती; और यदि तादात्म्य संबंधसे "रू-
पवान्घटः" इसविशिष्टबुद्धि को कोई उपपन्न करे; तो स-
र्वथा अयुक्त जानना क्योंकि तादात्म्य संबंध अभेदमेंही
होताहै; परंतु घट और रूपमें बड़ाभेदहै, कि घटतोद्रव्य
है, और रूप गुणहै, और घट वही बना रहताहै, पाकसे
एक रूपका नाश होके अन्यरूप उत्पन्न हो जाताहै; यदि
रूप और घटमें अभेद होता, तो रूपके साथ घट भी अव
श्य नाश होता। और यदि घटका भी नाश वहां मान ले,
जैसा कि पीलुपाक वादी अर्थात् जो कहतेहैं, कि अग्नि
के संयोगसे घटके अवयवोंमें क्रिया उपजतीहै; उस क्रि
यासे अवयवोंको विभाग होजाताहै; इस विभाग से अ
संयोगका नाश होजाताहै, जो घट का असमवायिकार
ण था। परंतु यह नियम सारे जगतमें साक्षात् दीख पड
ताहै, कि "असमवायि कारण के नाशसे सारे भावकार्योंका
नाश होजाता है" इसलिये उस संयोगके नाश से घटका ना
श होजाताहै, इसीभांति कपाल, कपालिका, चतरणुक
आदि द्वाणुक तक सारे अवयवों का नाश होके केवल प
रमाणुओंमेंही पाक होकर अदृष्टविशेषके बलसे फिर
द्वाणुकसे आदि लेकर घटतक अवयवी बनजातेहैं। पं-
तु इस मतमें प्रत्यभिज्ञा सर्वथा बिगड़जावेगी, जोकुम्हा-
रको होतीहै, कि यह वही मेरा नीलघट अबरक्त होगया
है; और यदि उसका सजातीय घटमान के कठिन तासे
प्रत्यभिज्ञाका निर्वाह करभी ले; तो यह बात लोगोंमें यु
क्तिसे सिद्ध नहीं होसकती, कि दंड, चक्र आदि सामग्रीसे

बिना केवल अदृष्ट से परमाणुओंका घड़ा बनजावे। और न्यायशास्त्रमें बिना युक्तिके कोई पदार्थ नहीं मानाजाता; इससे सिद्ध हुआ, कि रूप तादात्म्य संबंधसे रूपमें रहे भी परं घटमें रूप समवाय संबंध सेही रहेगा। और कालिक अथवा विकृत विशेषणता आदि साधारण संबंधोंसे रूप घटमें रहता है, इसमें यद्यपि कोई विवाद नहीं; परंतु इन संबंधोंसे तो रूप वायुमें भी रहताहै; और वायुका चक्षु से प्रत्यक्ष नहीं होता, और यह नियम पक्काहै, कि जिस स्थूल पदार्थमें रूप रहे, उसका चक्षुसे अवश्य प्रत्यक्ष होताहै; इससे जानागया, कि रूपआदि गुणोंका अपना असाधारण संबंध औरही है; कि जिस संबंधसे रूप पृथिवी जल और तेज इन तीनोंमेंही रहता है; और वायुमें नही रहता किंतु वायुमें उस संबंध से स्पर्श रहताहै, जिससे त्वाच प्रत्यक्ष वायुका होताहै, पृथिवी जल और तेज इन का त्वाच भी होताहै, और चाक्षुष भी होताहै; क्योंकि इनमें उस संबंधसे रूप और स्पर्श ये दोनों रहते हैं, वह संबंध समवाय ही है। इन सब युक्तिओं से सिद्ध हुआ, कि द्रव्य, गुण, कर्म्म, सामान्य और विशेष ये पांच पदार्थ स्वरूप संबंधसे कहीं नही रहते, किंतु समवाय संबंधसे रहतेहैं; इसीसे इन्हें समवायी कहतेहैं। किस २ पदार्थमें कौन २ पदार्थ समवाय संबंध से रहताहै; इसका नियम बांधतेहैं, अवयवोंमें अर्थात् खंडोंमें अवयवी अर्थात् समुदाय समवाय संबंधसे रहताहै; और द्रव्यों में गुण मूर्त्तों में कर्म्म, व्यक्ति में जाति, और नित्य द्रव्यों में विशेष समवाय संबंधसे रहते

हैं। और अवयवी, अवयव, गुण द्रव्य, क्रिया मूर्त, जाति व्यक्ति, विशेष-नित्यद्रव्य इन्हें अयुतसिद्ध कहते हैं; अर्थात् ये सब इकट्ठे दो २ कभी नहीं उत्पन्न होवें, जैसे पहिले अवयव उत्पन्न हो लेते हैं, तो पीछे से अवयवी उत्पन्न होता है। ऐसा नहीं होसकता, कि अवयव और अवयवी इकट्ठे एक क्षणमें ही उत्पन्न होजावें, क्योंकि अवयवी का समवायि कारण अवयव हैं, और कारण वह होता है, जो नियम से पूर्व (कार्यकी उत्पत्तिसे पहिले) रहे; इसलिये पहिले अवयव अपनी कारण सामग्री से उत्पन्न होकर पीछेसे अपने कार्य अवयवी को उत्पन्न करेगा। इसी भांति गुणोंका समवायिकारण द्रव्य पहिले अपनी कारण सामग्रीसे उपजके पीछेसे अपने कार्य गुणोंको उपजावे; और उत्क्षेपण आदि कर्मोंके समवायिकारण मूर्त पहिले अपनी सामग्री से उत्पन्न हो के पीछेसे अपने कार्य कर्मोंको उपजाते हैं; और जातितो नित्य होनेसे सदाही बनी रहती है, घट पट आदि व्यक्तियां तो पीछेसे सृष्टिकाल में परमाणु आदि अपनी कारण सामग्रीसे उपजती हैं; और विशेष भी चाहे नित्य है, तोभी उसका ज्ञान नित्य द्रव्योंमें अपेक्षा बुद्धिके उपजनेसे पीछेही होता है; इनसब युक्तियोंसे सिद्ध हुआ, कि पूर्वोक्त दो २ पदार्थ इकट्ठे एकक्षणमें नहीं उपजते; इसीसे ये सब अयुत सिद्ध कहाते हैं। इनसे अतिरिक्त किसी पदार्थोंमें समवाय संबंध नहीं होता, और समवाय, अभाव इन दोनोंका समवाय नहीं बनसकता; इसलिये स्वरूप मानाहै। जहां लाघव से निर्वाह होजावे,

अर्थात् लाघव करनेसे कोई दोष नपडे, तो वहां गौर-
व करना अयुक्त होताहै; परंतु यहां किसी लाघवसे नि
र्वाह नहीं होता, इससे गौरव युक्त भी स्वरूप संबंध यहां
मानाहै; क्योंकि समवाय संबंध का समवाय संबंध मानें, तो
अनवस्था लगेगी, इससे स्वरूप संबंधही मानना। यहां
कोई लोग आशंका करतेहैं, समवाय संबंधका स्वरूप संबं
ध जो मानतेहो, तो वहभी समवायही हुआ, तो अनवस्था
लगी रही। इसका उत्तर एकतो यहहै, कि यद्यपि समवाय
और समवाय का स्वरूप एकहीहै, तो भी समवायत्व और
स्वरूपत्व के भेदसे अनवस्थाका वारण करते हैं। और दूस
रा उत्तर यहहै, कि यदि समवाय संबंधका स्वरूप संबंध स
मवाय ही मानें, तो अनवस्थालगे; परंतु वह स्वरूप संबंध
प्रतियोगी अथवा अनुयोगीका रूप मानने से कोई दोष
नहीं लगता; और अभाव का भी समवाय संबंध नहीं
बनता, क्योंकि समवाय संबंध नित्य होताहै, तो जिस
स्थानसे घट उठाकरले जावें, वहां ऐसा ज्ञान होताहै, कि
यहां घट नहीं है, अर्थात् यहां घट का अभाव है, और फि
र वहां घट लेआए, तो यह ज्ञान नहीं होता, कि "यहां घ
ट नहीं है" जब अभावका समवाय संबंध माना, तो वहां
अवश्य यह ज्ञान होना चाहिये, कि "यहां घट नहीं है" चा
हे घट लेभी आयेहैं, क्योंकि घटाभाव का समवाय संबं
ध नित्यहै, इसलिये उसे कोई हटा नहीं सकता; और यह
सिद्ध कर आयेहैं, संबंध होने पर कभी विशिष्ट बुद्धिमें
विलंब नहीं होता; और घटा भाव भी नित्यहै, इसलिये

घटके आनेसे वह भी नहीं रह सकता; यदि कोई कहे, कि
घटाभाव अनित्य है, घट के आनेसे वह नष्ट होगया, तो सं
बंध रहा भी, पर वह अभाव नहीं रहा, इससे यह विशिष्ट
बुद्धि नहोगी, कि यहां घट नहीं है। इसका उत्तर यह है,
कि लाघव से अत्यंताभाव सारे जगतमें एक माना हुआ
है; अब उसे जब अनित्य माना, तो जहां घट नहीं अर्था
त् घटात्यंता भाव है, फिर वहां घट ले आये, तो घटाभाव
नष्ट होगया; तो और स्थान में घट नहीं है, अर्थात् घटा
त्यंताभाव है, ऐसी प्रतीति नहोनी चाहिये; क्योंकि घटा
त्यंताभाव तो वहांही नष्ट होगया, तो नष्ट हुआ हुआ प
दार्थ कहीं नहीं रह सकता; इसलिये अभाव का भी सम
वाय संबंध नहीं होसकता, किंतु अभावका भी स्वरूप सं
बंध ही होताहै। और समवाय संबंधका लक्षण नित्यत्वे
सति संबंधत्वहै, अर्थात् जिसकी उत्पत्ति भी नहो, और
नाशभी नहो, ऐसे संबंधको समवाय संबंध कहते हैं। यद्य
पि कोई २ स्वरूप संबंध भी ऐसा होताहै, कि जिसकी उत्प
त्ति नहो और नाश भी नहो; परंतु वह गौण संबंध है, और
समवाय संबंधके लक्षण में तो मुख्य संबंधका निवेश है;
अर्थात् जिसकी उत्पत्ति भी नहो, और नाश भी न हो, ऐसे
मुख्य संबंधको समवाय संबंध कहते हैं। अब मुख्य सं
बंध और गौण संबंधका भेद प्रगट करते हैं; अर्थात् सं
बंध दो प्रकारकाहै, एक मुख्य और एक गौण। प्रतियो
गी और अनुयोगी ये दोनों संबंधी कहाते हैं, और जो सं
बंध संबंधियोंसे भिन्न संबंधियोंमें रहे, उसे मुख्यसंबंध

कहते हैं; और उससे भिन्न संबंध गौण संबंध कहाता है।
जैसा कि समवाय संबंध से घट कपालोंमें रहता है, इस
समवाय का प्रतियोगी घट और अनुयोगी कपाल है; इन
दोनोंसे समवाय संबंध भिन्न है; और घटका समवाय क-
पालोंमें रहता है, तो मानो संबंधियोंमें ही रहा; इससे समवा
य संबंध मुख्य संबंध हुआ। यद्यपि संयोग आदि और भी
मुख्य संबंध हैं, परंतु वे सब अनित्य हैं; नित्य मुख्य संबं
ध केवल समवाय ही है। और स्वरूप संबंध तो गौण संबं-
ध है, क्योंकि चाहे वह संबंधियोंमें ही रहता है, पर संब-
धियोंसे भिन्न नहीं है, किंतु प्रतियोगी अथवा अनुयोगी
वह संबंध कहाता है; जैसा कि इस देशमें घट नहीं, अर्था
त घटका अभाव यहां स्वरूप संबंधसे है, इस स्वरूप संबंध
का प्रतियोगी घटाभाव और अनुयोगी यह देश है; और
अभाव निरूपणमें यह बात स्पष्ट लिखी जावेगी, कि घ
टाभाववान् अयं देशः इस ज्ञान के समकालमें वर्तमान जो
घटाभाववान देश यही घटाभाव का स्वरूप संबंध है; तो
मानो यहां अनुयोगीका नाम स्वरूप संबंध हुआ. संबंधि
योंसे भिन्न नहीं, इससे यह गौण संबंध है। यहां कई लोग
ऐसी आशंका करते हैं, कि समवाय संबंध सारे जगत् में ए
क और नित्य माना है; और गुणसब समवाय संबंधसे द्र
व्योंमें रहते हैं, और जिस वस्तुका संबंध जिस पदार्थ में र
हे, उस पदार्थमें उस वस्तुकी विशिष्टबुद्धि होजाती है; और
स्पर्शगुण समवाय संबंधसे वायुमें रहता है. तो मानो स्पर्श
का समवाय वायु में रहगया; परंतु स्पर्शका समवाय

और रूपका समवाय एकही है, तो स्पर्शका समवाय का
रूपका समवायही वायुमें रहा; इसलिये स्पर्शवान् वायुः
इसकी नाईं रूपवान् वायुः यह रूपकी विशिष्टबुद्धि भी
वायु में होनी चाहिये अर्थात् वायुकाभी चक्षुसे प्रत्यक्ष
होना चाहिये; और इसीरीति यहभी आशंका करते हैं,
कि एक घट जो पहिले श्याम है, तो नीलरूपका सम-
वाय संबंध उसमें रहा, फिर वह पाक (अग्निके संयोग) से
रक्त होगया, तो उस रक्तताके समय उसे नील कोई नहीं
कहता; सो नील भी कहना चाहिये, रक्तरूप के आनेसे
नीलरूपका समवाय तो नहीं हट सकता, क्योंकि समवा-
य संबंध नित्यहै, तो रक्तताके समय रक्तरूपवान् घटः इस-
की नाईं नीलरूपवान्घटः यह नीलरूप की विशिष्टबुद्धि
भी रक्तघटमें होनी चाहिये। इनआशंकाओंका उत्तर इस
भांति किया करतेहैं, कि केवल संबंधही विशिष्टबुद्धि-
का नियामक नहीं होता; किंतु जबतक वह वस्तु और
उस वस्तुका संबंध ये दोनों जहां रहें, वहां उस वस्तुकी त-
वतक विशिष्टबुद्धि होतीहै; तो वायुमें रूपका समवाय
चाहे रहा भी, परंतु रूपनहीं रहा, इससे रूपवान्वायुः य-
ह विशिष्टबुद्धि कभीनहोगी; किंतु स्पर्श और स्पर्शका
समवाय ये दोनों वायुमें रहतेहैं, इसलिये स्पर्शवान् यह
स्पर्शकी विशिष्टबुद्धि वायुमें बिना किसी विवादसेही हो
जातीहै; इसीभांति नीलघटमें जबतक नीलरूप और नी-
ल रूपका समवाय ये दोनोंबनेहैं, तबतक तो नीलरूपवा-
न्घटः इस विशिष्टबुद्धिके होनेमें कुच्छ विवाद नहींहै,

और अज्ञात दशामें तो नीलरूपही नष्ट होगया, तो नील रूपवान् घटः यह विशिष्टबुद्धि कहांसे होगी; किंतु उस समय रक्तरूप और रक्तरूप का समवाय संबंध ये दोनों घ टमेंहैं, इसलिये रक्त रूपवान् घटः यह विशिष्टबुद्धि उस समय अवश्य होगी; इसरीति सब दोष हटाकर सारे ज गत में लाघवसे समवाय संबंध एक नित्य मुख्य संबंध मानाहै ॥ उस पदार्थका न होना अभाव कहाताहै, जै सा कि यहां घट नहीं है, अर्थात् घटका अभाव यहां है; लक्षण इसका भावभिन्नत्व अर्थात् भावसे भिन्न पदार्थ अभाव होताहै. इसमें कई लोग ऐसी आशंका करतेहैं कि अभाव पदार्थ के जानने वास्ते अभावका लक्षण करतेहैं; और उस लक्षणमें भेदका निवेश कियाहै, परं तु अभाव पदार्थके जानने विना भेद पदार्थका जानना सर्वथा विरुद्धहै; क्योंकि सामान्य ज्ञानसे विना विशेषज्ञा न कभी नहीं होता, जैसा कि साधारण घट पदार्थके जानने विना उसके विशेष भेदोंका जानना कि यह नील घटहै, अथवा पीत घटहै, सर्वथा बुद्धिसे विरुद्धहै; तो अभाव पदार्थके जानने वास्ते भेद (अन्योन्याभाव) के द्वारा अभा वका लक्षण किसीरीति भी युक्तिसे सिद्ध नहीं हो सक ता। इसका उत्तर ऐसे करतेहैं, कि यद्यपि अन्योन्याभा व भी एक अभाव का ही भेदहै, परंतु अन्योन्याभावत्व अखंडोपाधिहै, अर्थात् इसका कुछ लक्षण नहीं हो स कता, कि जिसके बनानेमें अभाव की अपेक्षा पड़ जाने से अन्योन्याश्रय दोष लगजावे; इसलिये अभाव के

लक्षण में भेदका निवेश करने से भी कुछ दोष नहीं आ ता, मानों भाव भिन्नत्व अभावका लक्षण उत्तम है; और कई लोग ऐसे भी अभाव का लक्षण करते हैं, कि "प्रति योगिज्ञानाधीन ज्ञानविषयत्वं" अर्थात् प्रतियोगीके ज्ञ नसे जिसका ज्ञान हो, उसे अभाव कहते हैं; क्योंकि अ भाव (न होना) उसी वस्तुका माना जाता है, कि पहिले जिस वस्तुको भली भांति जानलें; जैसा कि यह घट है, इ स रीति घटको पहिले भली भांति जानलें, तो पीछे से ऐसा मालूम होता है; कि घट यहां है, और यहां नहीं अ र्थात् यहां घटका अभाव है; तो प्रतियोगी के अर्थात् घ ट के ज्ञानसे घटाभाव का ज्ञान हुआ, लक्षण समन्वय होगया; इसीसे शशके सींगका अभाव नहीं मानते, क्यों कि शशका सींग नहीं, इससे उसका ज्ञान नहीं, तो मा नों प्रतियोगीका ज्ञानही नहीं, कि जिससे अभावका ज्ञा न हो, और जिसका अभाव हो उसे प्रतियोगी कहते हैं, इस लिये यह लक्षण भी भावभिन्नत्व से उत्तम नहीं है; क्योंकि उसमें तो भेदत्व आवंछेदाधिमान कर निर्वाह करभी लि या, परंतु इस लक्षण में अभावके ज्ञान विना जिसका ज्ञा न कभी न होसके, ऐसे प्रतियोगीका निवेश किया है; तो वही अन्योन्याश्रय दोष यहां भी लगा। और संसर्गाभा वका लक्षण "अन्योन्याभाव भिन्नाभावत्व" है, अर्थात अन्योन्याभावसे भिन्न जो अभाव उसे संसर्गाभाव कह ते हैं; समन्वय इसरीति करना, कि अन्योन्याभाव यद्यपि अभाव तो है, परंतु अन्योन्याभावसे भिन्न नहीं; क्योंकि

अपने में अपना भेद कभी नहीं रहता; और घट आदि पदार्थ यद्यपि अन्योन्याभाव से भिन्न तो हैं, परंतु वे अभाव नहीं भाव हैं, किंतु अन्योन्याभाव से भिन्न अभाव प्रागभाव, ध्वंस और अत्यंताभाव ये तीन हैं; इसलिये इन्हीं तीनों को संसर्गाभाव कहेंगे। और अन्योन्याभाव का लक्षण "तादात्म्य संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावत्व" है, तादात्म्य अभेद को कहते हैं. और यह एक युक्तिसिद्ध नियम है; कि जो वस्तु जिस संबंध से जहां न रहे, उस संबंध से जिस अभाव का प्रतियोगी के साथ विरोध है, ऐसा उस वस्तु का अभाव स्वरूप संबंध से वहां अवश्य रहेगा। जैसा कि घट समवाय संबंध से अपने अवयवों कपालों में रहता है, और भूतल में संयोग संबंध से घट रहे भी परंतु समवाय संबंध से नहीं रहता; इसलिये समवाय संबंध से घट के साथ जिसका विरोध है ऐसा घट का अभाव स्वरूप संबंध से भूतल में अवश्य रहेगा; और एक देश काल में रहने को विरोध कहते हैं, अर्थात् एक समय एक स्थान में न रहना विरोध कहाता है; जैसा कि जिस देश में घट जबतक रहे, तब घटाभाव वहां कभी नहीं रहता; प्रकृत में अभेद संबंध से घट २ में ही रहता है, पट आदिकों में नहीं रहता, इसलिये अभेद संबंध से घट के साथ है, विरोध जिसका ऐसा घट का अभाव जिसे नैयायिक लोग "अभेद संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक घटाभाव" भी कहते हैं; ऐसा घटभेद पट आदि पदार्थों में रहेगा; परंतु इस लक्षण में एक तो यह दोष है, कि भेद की प्रतियोगिता (विरो-

धिता) में सर्वथा वच्छिन्नत्व माननेमें प्रमाण कोई नहीं मि-
लता; और दूसरा यह दोष है, कि तादात्म्य संबंध वृत्यनि-
यामक संबंध है; ऐसे संबंधोंसे पदार्थ कहीं वर्त्तमान नहीं
होता, किंतु संबंधी मात्र होताहै, तो विरोध इस संबंध से
कैसे होगा; क्योंकि ग्रंथकारोंने वृत्ति नियामक संबंध
(अर्थात् जिन संबंधोंसे पदार्थ वर्त्तमान कहाते हैं) संयो-
ग, समवाय, स्वरूप और कालिक इतनेही कहे हैं; और
कोई २ आचार्य्य विषयता को भी इनमें गिनते हैं; इनसे
भिन्न सारे संबंध वृत्तिता के नियामक नहीं होते; किंतु इ-
न संबंधों से संबंधिता मात्र होतीहै, और तीसरा दोष य-
ह है, कि अन्योन्याभाव जिसे भेद भी कहते हैं; इसके लक्ष-
ण में ऐसे अभेद संबंधका निवेश है, कि जो भेद पदार्थके
जाने विना कभी नहीं जानाजाता। इन सब दोषोंसे अन्यो-
न्याभावत्व (भेदत्व) अखंडोपाधि माना है, क्योंकि इसकी
निरुक्ति कुछ नहीं होसकती। और ध्वंस जिसे नाश भी क-
हते हैं, इसीसे अभूत (था) यह व्यवहार होताहै; जैसा कि
घट जबतक बना है; तबतक यह कोई नहीं कहता, कि
घट था, किंतु सब यही कहते हैं, कि घट है, परंतु जब उ-
स घटका ध्वंस (नाश) हुआ, तो उसी समयसे सब लोग
कहने लगते हैं, कि घट था, अब नहीं है, किंतु उसका
ध्वंस अब है; और यह ध्वंस ऐसा अभाव माना है, कि जि-
सकी उत्पत्ति तो होती है; और नाश कभी नहीं होता, क्यों
कि जिस वस्तुका नाश दो घड़ी पहिले होचुका है, और जि-
सका नाश चार युग पहिले होचुका है; सबमें (था) यह

व्यवहार एक साही है, जैसा कि रामचंद्र थे, अथवा महाराज रणजीतसिंह थे, वा कल्ह के मरे हुए रामनारायणजी थे, इन सबोंमें समय का तो बड़ा अंतर है, परंतु (थे) इस व्यवहारमें कोई अंतर नहीं; इससे सिद्ध हुआ, कि थे इस प्रतीति का नियामक ध्वंस उत्पन्न तो होता है, क्योंकि उस वस्तु के होते २ थी, यह व्यवहार नहीं होता; पर इस ध्वंसका नाश नहीं होता; अर्थात् ध्वंसका ध्वंस नहीं होता; और लक्षण ध्वंसका जन्याभावत्व है, अर्थात् उत्पन्न होनेवाले अभाव को ध्वंस कहते हैं; समन्वय इसरीति से करना, कि घट आदि पदार्थ यद्यपि जन्य हैं, परंतु वे अभाव नहीं हैं; भाव हैं, और अत्यंताभाव आदि यद्यपि अभाव तो हैं, परंतु वे जन्य नहीं हैं; किंतु जन्य अभाव ध्वंस ही है; कि जिससे अभूत (था) यह प्रतीति होती है वही ध्वंस जानना।

उत्पत्ति से पूर्व वस्तुका न होना, प्रागभाव कहाता है; और प्रागभावकी सिद्धिमें प्राचीनोंका यह सिद्धांत है; कि घटकी उत्पत्ति से अनंतर दंड, चक्र, कुलाल और कपाल आदि सारे कारण वर्तमान भी हैं; परंतु उस कपाल में घट फिर कभी नहीं उपजता, इससे सिद्ध होता है, कि घटका प्रागभाव भी घटका कारण है; क्योंकि जिस प्रागभाव नामी कारण के नाश होजाने से सामग्री विगड़जाती है इसलिये दूसरी वेर घट कभी नहीं उपजता; इससे सिद्धांत यह निकला, कि एक कपालमें दूसरी वेर घटकी उत्पत्ति हटानेको लिये प्रागभाव अवश्य मानना चाहिये इसमें कोई ऐसी आशंका करते हैं. कि जहां उत्पत्तिसे प-

हिले समवाय संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक द्रव्य साम
न्याभाव रहे, वहांही दूसरे क्षणमें समवाय संबंधसे द्रव्य
उपजताहै; और जिस कपालमें एक वेर घट उत्पन्न हुआ,
उस कपालमें वही घट समवाय संबंधसे रहताहै; उपर-
का द्रव्यसामान्याभाव कभी नहीं रहेगा, इसलिये कारण
के नहोने से दूसरी वेर घट कभी नहीं उपजेगा; फिर प्रा-
गभाव मानना व्यर्थ है, और हमने जो द्रव्याभावकारणमा
नाहै, वहतो अत्यंताभाव है; और घट उपजताहै, इसी भां
ति घटका ध्वंस उपजाहै; यह ध्वंसकी जैसे साक्षात प्रती-
ति होतीहै, ऐसे प्रागभावकी प्रतीति भीकहीं नहीं होती,
फिर प्रागभावकाहेको मानना। इसका उत्तर कोई यूं भी
देतेहैं, कि द्रव्याभावको जो कारण मानतेहो; तो उस द्रव्य
के समान कालमें होने वाले ध्वंसका अभाव क्यों नहीं का
रणहै; इन दोनों में से एकही कारण है, यह बात किसी प-
क्की युक्तिसे नहीं सिद्ध होसकती; किंतु दोनों कारण माने
जावेंगे, इसलिये दो कारण माननेकी अपेक्षा एक प्रागभा
व को कारण माननेमें बहुत लाघव है; परंतु यह उत्तरठी-
क नहीं प्रतीति होता, क्योंकि प्रागभाव को कारण मानने
से तभी लाघव होताहै, जेकभी एक कोई प्रागभावही
कारण होसके; परंतु उसमें भी विवादहै; कि घटकी उत्प
त्ति में घटका प्रागभावही कारण मानेंगे, और इसमें क्या
युक्ति है; कि घटके समानकालमें उपजने वाले और पद
र्थोका प्रागभाव नहीं कारण है; किंतु उस समय में उपज
ने वाले सारे पदार्थोके प्रागभाव कारण मानने पड़ेंगे,

तो लाघव कुछ नहीं, फिर प्रागभाव मानना व्यर्थ है। प्राचीन लोग इसका उत्तर ऐसे करते हैं, हजार तंत जिस पटके समवायिकारण हैं, और तंतओंमें उस पट की उत्पत्ति होनेकेलिये उन सारे तंतओंको पृथक् २ कारण मानेंगे; इन हजारों पदार्थोंको कारण माननेकी अपेक्षा एक प्रागभावको कारण माननेमें बहुत लाघव है; और उन तंतओंसेभिन्न तंतओंमें प्रागभावके नहोनेसेही वह पट नहीं उपजेगा, और यदि ऐसाकहें, कि प्रागभाव तो प्रत्येक तंतमें भी रहता है, तो सहस्र तंतमें उपजने वाला पट दो चार तंतओंमें उत्पन्न होजावे; इसलिये सबसे पिछले तंतका संयोग विशेष करके कारण मानेंगे, तो और तंतओंमें पिछले तंतका संयोग न रहने सेही पट नहीं उपजेगा, फिर प्रागभाव काहेको मानना। और अंतके तंतका संयोग कालिक संबंधसे सारे तंतओंमें रहताहै, तो दो तीन तंतओंमें पटकी उत्पत्ति नहीं हट सकती; इसलिये सबसे पिछले तंतका संयोग समवाय संबंधसे पटका कारण अवश्य मानना पड़ेगा; परंतु समवाय संबंधसे वह संयोग और तंतओंमें रहताही नहीं, फिर प्रागभाव मानना व्यर्थहै। इसका उत्तर यह है, कि हजार तंत जिस पट के समवायिकारण हैं, वह पट उन सारे तंतओंमे उपजता है; अब सबसे पिछले तंतमेंही उपजना चाहिये; औरोंमें न उपजे; क्योंकि सबसे पिछले तंतका संयोग समवाय संबंधसे पिछले तंतमेंही रहेगा, औरोंमें कभी नहीं रहेगा; इसलिये पिछले तंतका संयोग कालिक संबंध से

अवश्य कारण मानना पड़ेगा, परंतु कालिक संबंध से वह संयोग उन तंतुओंसे भिन्न तंतुओंमेंभी रहताहै; तो उनमेंभी वह पट उपजना चाहिये। इससे सिद्धांत यह निकला, कि पिछले तंतका संयोग जो कभी समवाय संबंधसे कारण मानाजावे, तो केवल अंतका और उसके समीपका ये दो तंतुही कारण होने चाहिये; और पहिले तंतुओंमें से कोईभी कारण नहीं होना चाहिये; क्योंकि वह संयोग उन्हीं दो तंतुओंमें समवाय संबंधसे रहताहै, इसलिये पिछले तंतुका संयोग कालिक संबंधसेही पटका कारण मानना चाहिये यह संयोग कालिक संबंधसे इतर तंतुओंमें रहताहै, तो भी उस पटका प्रागभाव उनमें नहीं है; इससे वह पट उनमें नहीं उपजेगा, इसरीति दोष हटानेकेलिये प्रागभाव अवश्य मानना चाहिये। परंतु घटके प्रागभावका घटके साथ विरोध माननेमें कोई युक्ति नहीं है; और भविष्यति (होगा) यह प्रतीति प्रागभावसेही होती है; यह प्रागभाव ऐसा मानाहै, कि जिसका नाश तो होताहै, परंतु उत्पत्ति जिसकी नहीं होती। क्योंकि दो घड़ीसे अनंतर जो वस्तु उत्पन्न होगी, अथवा चारयुगोंसे अनंतर जो वस्तु उत्पन्न होगी; भविष्यति (होगा) यह व्यवहार सबमें तुल्य ही होगा। और प्रागभाव का लक्षण विनाश्यभावत्व है, अर्थात् जिसका नाश हो ऐसे अभाव को प्रागभाव कहते हैं; समन्वय इसरीति करना कि घट आदि पदार्थों का नाश तो यद्यपि होताहै, परंतु वे पदार्थ अभाव नहीं हैं; और ध्वंस आदि यद्यपि अभाव तो हैं; परंतु उनका

नाश नहीं होता; किंतु जिसका नाश होजावे, ऐसा अभाव प्रागभाव ही होता है; इस प्रागभाव की उत्पत्ति नहीं होती, अर्थात् प्रागभावका प्रागभाव नहीं होता। पदार्थ की उत्पत्तिसे पहिले, पदार्थके नाशसे अनंतर और पदार्थकी वर्त्तमान अवस्थामें, भी उस पदार्थ के शून्य देशमें इन तीनों समयोंमें रहने वाले संसर्गाभाव को अत्यंताभाव कहते हैं; इसी लक्षणको संस्कृतमें "नित्यसंसर्गाभावत्वं कहतेहैं, समन्वय इसरीतिकरना कि घट आदि पदार्थ तो इन तीन कालोंमें न रहतेहैं और न अभाव हैं; और आकाश आदि नित्य पदार्थ यद्यपि कई वस्तुओंके पूर्वोक्त तीनों समयोंमें रहतेहैं, परंतु वे अभाव नहींहैं, और अन्योन्याभाव (भेद) यद्यपि अभावभीहै, और उक्त तीन समयोंमेंभी रहताहै; परंतु वह संसर्गाभाव नहीं है। और ध्वंस यद्यपि संसर्गाभाव भी है, परंतु उक्त तीन समयोंमें से पदार्थके नाशसे अनंतर तो रहताहै; परंतु उत्पत्ति से पूर्व और वर्त्तमान अवस्थामें नहीं रहता। इसी भांति प्रागभाव यद्यपि संसर्गाभाव भी है, परंतु उक्त तीन समयोंमेंसे पदार्थ की उत्पत्ति से पहिले तो रहताहै, वर्तमान अवस्थामें और नाश से पीछे नहीं रहता। किंतु उक्त तीनों समयों में जो रहे, ऐसा संसर्गाभाव अत्यंताभावही होता है; यहां कई लोग ऐसी आशंका करते हैं, कि अत्यंताभाव जब नित्यहै, तो जिस देशमें घट पड़ा हुआ है, वहां भी यह घटात्यंताभाव अवश्य रहना चाहिये, क्योंकि घटके होनेसे घटका अत्यंताभाव कभी हट नहीं सकता,

जिससे नित्य माना है; इस आशंका का उत्तर यह है; कि जिस देशमें घट है, वहां नित्य होनेसे घटाभाव होभी; परंतु घटाभाव की विशिष्टबुद्धि वहां कभी नहीं होगी, क्योंकि विशिष्टबुद्धि वहांही होती है; जहां वह वस्तुभी रहे, और उस वस्तुका संबंध भी रहे; और जहां घट है, वहां घटाभाव का स्वरूप संबंध नहीं है, इसीसे विशिष्ट बुद्धि नहीं होती; क्योंकि घटाभाववान् अयंदेशः (इस देशमें घट नहीं है) इस ज्ञानके तुल्य समय में वह देश घटाभावका स्वरूप संबंध है, कि जिसमें घट नहीं है; और जिस देशमें घट पड़ा है, वहां ऐसी बुद्धिकभी नहीं होती, कि यहां घट नहीं है; क्योंकि जहां घटका निश्चय हो, वहां घटाभावकी बुद्धि कभी नहीं होती, यह स्वयंसिद्ध पीछे हेत्वाभासोंके निरूपण में लिख आये हैं; परंतु भूतल में संयोग संबंध से घटका निश्चय रहे भी, तो भूतल में समवाय संबंधसे घट नहीं है, ऐसी समवाय संबंधसे घटाभावकी बुद्धिहोही जाती है; इसी भांति समवाय संबंध से कपालोंमें घटका निश्चय भी होता है, और कपालोंमें संयोग संबंधसे घट नहीं है; ऐसी घटाभाव की बुद्धि भी होजाती है; और इसी रीति घटका घटाभाव के साथ जो विरोध (एक स्थानमें न रहना) माना है, वह भी नहीं बनता, क्योंकि भूतलमें संयोग संबंधसे तो घट रहता है, और समवाय संबंधसे घट नहीं रहता, अर्थात् घटाभाव भी रहता है; इसी भांति कपालोंमें समवाय संबंध से घट रहता है, परंतु संयोग संबंध से नहीं रहता

अर्थात् उसका अभाव रहगया; निदान जहां कोई वस्तु किसी एक संबंध से रहेगी, तो अन्य संबंध से वह न रहेगी, अर्थात् उसका अभाव भी वहां रहेगा; तो विरोध (एक देशमें न रहना) किस रीति बने; क्योंकि वह वस्तु और उस वस्तु का अभाव दोनों एक स्थान में रहही गये। इस लिये ऐसे विरोध मानते हैं, कि जो वस्तु जिस संबंध से जहां रहे, वहां उस संबंध से वह वस्तु नहीं है; ऐसी अभावकी बुद्धि कभी नहीं होगी; जैसा कि जिस भूतल में संयोग संबंधसे घट है, वहां ऐसी घटाभाव की बुद्धि कभी न होगी, कि यहां संयोग संबंध से घट नहीं है; इसी घटाभाव को संस्कृतमें "संयोग संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक घटाभाव" कहते हैं, अर्थात् जिसका घटके साथ संयोग संबंधसे विरोध है, कि जहां वह अभाव रहता है, वहां संयोग संबंधसे घटको नहीं रहने देता, कि वह अभाव कपालोंमें सर्वदा रहता है, इसी से कपालोंमें घट संयोग संबंध से कभी नहीं रहता; इसी भांति समवाय संबंध से घट कपालोंमें रहता है, इसलिये समवाय संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक घटाभाव अर्थात् समवाय संबंधसे घटके साथ जिसका विरोध है, वह घटाभाव कपालोंमें कभी नहीं रहता; ऐसेही जहां यह निश्चय होवे, कि यहां संयोग संबंधसे घट है; वहां ऐसी बुद्धि कभी नहीं होती, कि यहां संयोग संबंध से घट नहीं अर्थात् संयोग संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक घटाभाव यहां है; इसभांति व्याप्य प्रतिबंधक भाव और विरोधकी सिद्धिके-

लिये अत्यंताभावका प्रतियोगीके साथ विरोध अवश्य किसी संबंधसे मानना; इसी संबंध को संस्कृतमें प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अर्थात् विरोधिता का क्या विरोधक नियामक संबंध कहते हैं; परंतु ध्वंस और प्राग भावका किसीसे विरोध नहीं, इसलिये इनका प्रतियोगितावच्छेदक संबंध कोई नहीं मानना; क्योंकि ध्वंसके समय तो घटका नाश होचुका है, और प्रागभावके समय घट उत्पन्नही नहीं हुआ; इसलिये घटके रहनेकी शंका भी वहां नहीं हो सकती, तो विरोध मानना व्यर्थ है; और घट ध्वंसके निश्चय से घट की अनुमिति कपालमें भाष्यकारने भी शेषवत् अनुमानके उदाहरणमें प्रमाणकी है, जैसा कपाले घटवत् घटध्वंसात्; इसलिये ध्वंस और प्रागभावके निश्चय से प्रतिबध्यप्रतिबंधकभाव भी नहीं बनता, इसलिये ध्वंस और प्रागभाव की प्रतियोगिता में संबंधावच्छिन्नत्व नहीं मानना; इसीरीति जहां घट रहता है, वहां घट का भेद भी रहजाता है; अर्थात् वह देश घट नहीं होता, किंतु घटसे भिन्न होता है; इससे अन्योन्याभावका भी प्रतियोगीके साथ विरोध नहीं है, और जहां ऐसा निश्चय हो, कि यह घट नहीं, अर्थात् यह घटसे भिन्न है; तो भी यहां घट है, इस ज्ञान का बाध (निषेध) कभी नहीं होता; इसलिये भेदका निश्चय किसी ज्ञान का प्रतिबंधक नहीं हुआ, इससे भेदकी प्रतियोगितामें भी संबंधावच्छिन्नत्व मानना व्यर्थ है; और जहां ऐसा निश्चय हो कि यहां संयोग संबं

यसे देशांतरीय घटनहीं है, अर्थात् संयोग संबंधाव-
च्छिन्न प्रतियोगिताक देशांतरीय घटाभाव यहांहै; इस-
से यह प्रतिबध्य प्रतिबंधभाव बिगड़ गया, कि जहां जि-
स संबंधसे घटका निश्चय हो, वहां ऐसे घटाभावका
निश्चय नहीं होता; कि जिसका घटके साथ उसी संबं-
धसे विरोधहो; इस आशंका का उत्तर इस भांति कर-
तेहैं, कि जहां घटका निश्चय हो, कि यहां घटहै, तो व-
हां घट सामान्याभावकी बुद्धि नहीं होती; अथवा ज-
हां घट सामान्याभाव का निश्चय हो, कि यहां कोई ए-
क भी घट नहीं है, तो वहां ऐसी बुद्धि कभी नहीं होगी
कि यहां घट है; इस घट सामान्याभाव को संस्कृत में
घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक घटाभाव भी कहते हैं
अर्थात् घटत्व जिसकी विरोधिता का नियम बांधता-
है, ऐसे अभाव को घट सामान्याभाव कहतेहैं । कि घ-
टत्व जिस २ में रहता है, उन सारे घटोंमेंसे एकभी जहां
रहेगा, वहां यह घट सामान्याभाव कभी नहीं रहेगा,
और देशांतरीय घटाभाव की विरोधिताका नियामक
तो देशांतरीयघटत्वहै, अर्थात् इस अभाव का केवल
देशांतरीय घटसेही विरोधहै, अन्यघटों से विरोध न-
हीं है । और घट सामान्याभावका तो सारे घटोंसे विरो-
धहै, इस विरोध्यविरोधक भावसे सिद्ध हुआ; कि अ-
त्यंताभावकी प्रतियोगितामें सामान्यधर्मावच्छिन्न-
त्व भी अवश्य मानना, और ध्वंस प्रागभावका प्रतिबंध्य
प्रतिबंधक भावही नहीं होता, तो विना प्रयोजन के

इनकी प्रतियोगिताओंमें सामान्यधर्म्मावच्छिन्नत्व भी नहीं मानना; परंतु अन्योन्याभाव (भेद) की प्रतियोगितामें सामान्यधर्म्मावच्छिन्नत्व अवश्यमानना पड़ता है; क्योंकि नीलोघटो घटादन्य। अर्थात् नीलघट घट नहीं है ऐसी प्रतीति कभी नहीं होती, यदि सामान्यधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद नमानें तो, घटहै प्रतियोगी जिसका ऐसा भेद अर्थात् किसी एक घटका भेद क्या पीतघट का भेद नील घटमे रहगया; तो नील घट घटसे भिन्नहै, क्या घट नहीं है, यह प्रतीति भीहोनी चाहिये; परंतु सिद्धांतमें यह प्रतीति कभी नहीं होती, इसलिये सामान्यधर्म्म से अन्योन्याभाव (भेद) की प्रतियोगिता (विरोधिता) अवश्यमाननी। प्रकृत में घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद अर्थात् जिस अभावका विरोध घटत्व से नियत है, कि जहां २ घटत्व रहे, वहां वो भेद नरहे, ऐसा घट भेद नीलघट में क्या किसी एकघटमें भी नरहेगा; क्योंकि सारेघटोंमे इसका विरोधी घटत्वही रहताहै, किंतु घटसे अतिरिक्त पटआदि सारे पदार्थोंमें यह भेद रहेगा, जिससे वहां घटत्व नहीं रहता; और पीतघटभेद तो घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद नहीं है, अर्थात् इस भेदकी विरोधिता का नियामक घटत्व नहीं होसकता; क्योंकि रक्तघट अथवा नीलघट में घटत्व और पीतघट भेद, यह दोनों रह जाते हैं; परंतु विरोधी दो पदार्थ एकस्थान में कभी नहीं रहते, किंतु पीतघटत्वसे इस भेदका विरोध जानना; जि

सके पीतघट में पीतघट भेद कभी नहीं रहता। और यह तो नियम पीछे अनुमान खंडमें लिखही आये हैं, कि भेद का प्रतियोगितावच्छेदक के साथ विरोध होता है; और प्राचीन नैयायिकोंका यह मत है, कि अत्यंताभाव का केवल प्रतियोगी के साथही विरोध नहीं है; किंतु प्रतियोगी, प्रतियोगीका ध्वंस और प्रतियोगीका प्रागभाव, इन तीनों के साथ अत्यंताभावका विरोध है। इनके मतसे समवाय संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक घटाभाव कपालोंमें कभी नहीं रहता, क्योंकि घटकी उत्पत्ति से पहिले तो घटका प्रागभावही विरोधी पड़ा है; और घटके उत्पन्न होने पर घटही विरोधी है, और घटके नाशसे अनंतर घट ध्वंसही विरोधी ऐसा है; कि जिसने कभी नहीं हटना, इसलिये इन प्राचीनोंके मतसे कपालोंमें ऐसा घटभाव तीनों कालोंमें से कभी नहीं रहा, कि जिसका घटके साथ समवाय संबंधसे विरोध है; परंतु किसी दृढ़ प्रमाणके न होनेसे नवीन लोग इसमतको नहीं मानते, बल्कि कई दोष देकर इस मतका खंडन करदेते हैं; जैसा कि इन तीनों से अत्यंताभावका विरोध माने, तो जो घट पहिले नील है, फिर पाक (अग्निके संयोग) से रक्त होगया; और अग्निके अधिक संयोग से फिर भी नील होजावेगा, तो रक्त होजाने के समय उस घटमें नील रूप नहीं है, यह बुद्धि सभके मतसे होती है; परंतु अब प्राचीनोंके मतसे न होनी चाहिये, क्योंकि पहिले नीलरूप का ध्वंस और आगे उत्पन्न होने वाले नीलरूप का प्रागभाव ये दोनों अत्यंताभावके विरोधी वहां पड़े हैं,

इसलिये केवल प्रतियोगी के साथही अत्यंताभाव का विरोध मानना, ध्वंस और प्रागभाव के साथ अत्यंताभाव का विरोध नहीं मानना; उक्त घटमें रक्त रूपके समय नीलरूपात्यंताभाव का प्रतियोगी नीलरूप नही है; इसलिये नीलं रूपंनास्ति यह बुद्धि होहीजावेगी। परंतु प्राचीन लोग इसमें यह युक्ति देतेहैं; कि रक्त घटमें जो नीलं रूपंनास्ति यह प्रतीति होती है; इसका अर्थ यह नहीं, कि रक्त घटमें नीलरूपका अत्यंताभाव है; किंतु यह अर्थ है, कि रक्त घटमें नीलरूपका ध्वंस है, अथवा नीलरूपका प्रागभाव है; अर्थात् न ञ्का क्या नहीं इसशब्दका अर्थ ध्वंस अथवा प्रागभाव मानना, अत्यंताभाव नञ् का अर्थ नहीं मानना; तो उक्त घटमें रक्त रूपके समय पहिले नील रूपका ध्वंस और आगे उत्पन्न होने वाले नील रूप का प्रागभाव जो रहगया, तो नीलं रूपंनास्ति यह प्रतीति रक्त घटमें होजावेगी; पुनः उक्त तीनों पदार्थोंसे अत्यंताभाव का विरोध मानें, तो क्या दोष है; इनका तात्पर्य्य यह है, कि उत्पत्तिसे पहिले प्रागभाव तो रहताही है, कि जिससे भविष्यति (होगा) यह प्रतीति होती है; तो वहां अत्यंताभाव मानना व्यर्थ है, । और इसीरीति जब वस्तुका नाश होजाता है, तो ध्वंसही वहां रहता हैं कि जिससे था यह प्रतीति होती है, इसलिये वहांभी अत्यंताभाव मानना व्यर्थ है; किंतु पदार्थ की वर्त्तमान अवस्थामें उस पदार्थ के शून्यदेशों केवल अत्यंताभाव मानना, नवीन लोग इसका खंडन ऐसे करते हैं, कि रक्त घटमें नीलरूप नहीहै, इस प्रतीतिमें (नहीं) शब्द का

अर्थ यदि ध्वंस और प्रागभावही माने, अत्यंताभाव न माने तो यह दोष लगता है, कि जो घट अग्निके संयोगमे थोड़ा र क्त हुआ, पुनः अग्निके अधिकसे बहुत रक्त होगया और पु नः अधिक अग्निके संयोग से इससे भी अधिक रक्त होजा वेगा; तो यह घट मध्यमें जब बहुत रक्त है, उस समय व हां ऐसी बुद्धि कभी नहीं होती, कि "अस्मिन्रक्त घटे रक्त रूपं नास्ति" अर्थात् इसरक्त घटमें रक्तरूप नहीं है; परंतु प्राचीनों के मतसे यह प्रतीति होजानी चाहिये, क्योंकि प हिले रक्तरूपका ध्वंस और आगे जो उपजेगा रक्तरूप उस का प्रागभाव ये दोनों इस घटमें रहगये; यदि प्राचीन यह कहें, कि नवीनके मतसे भी यह प्रतीति नहीं हट सकती, क्योंकि उक्तघटमें पूर्व रक्तरूपका अत्यंताभाव भी औ र उत्तर रक्तरूपका अत्यंताभाव भी नवीनोंके मतसे र हजाता है। इसका उत्तर नवीन लोग यह देते हैं, कि प्रतिबध्य प्रतिबंधकभावकी सिद्धिके अर्थ अत्यंताभा वकी प्रतियोगितामें सामान्यधर्मावच्छिन्नत्व अवश्य मानते हैं; और जहां एक घटभी हो, वहां अन्य घटोंका अभाव रहता भी है; परंतु घटोनास्ति यह प्रतीति अर्था त् यहां घट नहीं है, ऐसी प्रतीति कभी नहीं होती, इससे यह नियम सिद्ध हुआ, कि "जिसपदसे पीछे नञ् अर्था त् (नहीं) यह शब्द आवे, वह नञ् अर्थात् (नहीं) शब्द उ सपदके अर्थका सामान्यभाव जनावेगा; यत्किंचित् अ भाव नहीं जनावेगा। तो जहां एक घटभी हो, वहां घ ट नहीं है; ऐसी बुद्धिकभी नहोगी; क्योंकि इस प्रतीति

में "नहीं" शब्द घट पदसे पीछे आयाहै, इसलिये घटके सामान्याभाव को का घटत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यंताभावको जनावेगा; अर्थात् ऐसे घटाभावको जनावेगा, कि जिसका उनसारे पदार्थोंसे विरोधहै; जिन २ में घटत्व रहता है, परंतु इस देशमें जो एक घट पड़ाहै, घटत्व इस में भी रहगया; इसलिये घट सामान्याभाव इसीविरोधीके रहनेसे यहां नहीं रहेगा। इसी नियमसे जोपहिलेभी रक्तथा, अबभी रक्तहै, और फिरभी रक्तहोजावेगा; उस घटमें रक्तरूपंनास्ति अर्थात् यहां रक्तरूप नहींहै ऐसी प्रतीति नवीन के मत से कभी नहीं होगी, क्योंकि इस प्रतीतिमें रक्तरूप पदसे पीछे (नहीं) शब्द आयाहै, इसलिये रक्तरूपके सामान्याभाव का बोध होगा, कि जिसकासारे रक्तरूपोंसे विरोधहै; अर्थात् जहां कोई एक रक्तरूपभी रहेगा, वहां घटमें वर्तमान रक्तरूपके विरोधसेही यह प्रतीति नवीन के मतमें नहोगी, और ध्वंस प्रागभावकी प्रतियोगितामें प्रयोजन के नहोनेसे सामान्यधर्मावच्छिन्नत्व नहीं मानते, कि जिससे प्राचीनों के मतमें भी उक्त घटमें विद्यमान रक्तरूपका ध्वंस न रहनेसे रक्तरूपत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक ध्वंस नहीं रहा, इससे यह प्रतीति नहोगी; कि रक्तघट में रक्तरूप नहीं है। प्राचीन लोग यदि ऐसा कहें, कि इसी प्रतीतिको घटानेकेलिये ध्वंस और प्रागभावकी प्रतियोगितामें सामान्यधर्मावच्छिन्नत्व मानते हैं, तो जिस घटमें पाकसे नीलरूप नष्टहोके रक्तरूप उपजाहै, और प्रा

क पाकसे पुनः नीलरूप उपजेगा, उस रक्तघटमें यह प्रतीति सबके मतसे होजातीहै; कि यहां नीलरूप नहीं है, अब प्राचीनके मतसे नहोनी चाहिये; क्योंकि इनके मतसे इस प्रतीतिका अर्थ यह हुआ, कि रक्तघट में नीलरूपत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक ध्वंस क्या सारे नीलरूपोंका ध्वंस है; अथवा नीलरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक प्रागभाव क्या सारे नीलरूपोंका प्रागभाव है; परंतु यहबात सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि उस रक्त घटमें आगे उपजने वाले नील रूपका ध्वंस नरहने से सारे नीलरूपोंका ध्वंस भी नहीं रहसकता; और पहिले नष्ट होगये हुए नील रूपका प्रागभाव भी नही रह सकता; इसलिये ध्वंस और प्रागभाव की प्रतियोगिता में सामान्यधर्मावच्छिन्नत्वमानना सर्वथा युक्तिसे विरुद्ध है; इनसब विवादोंसे यह नवीनोंका मतही सिद्धांत रहा, कि अत्यंताभावका प्रतियोगीके साथही विरोधहै, ध्वंस और प्रागभाव के साथ विरोध नहीं है; और यहभी सिद्ध हुआ, कि नञ् (नहीं) शब्दसे अत्यंताभाव का अथवा अन्योन्याभाव (भेद) का ही बोध होताहै, ध्वंस अथवा प्रागभाव का बोध नञ् से कभी नहीं होता; किंतु ध्वंस, नाश, और अभूत, क्याथा इत्यादि शब्दों से ध्वंसका बोध होताहै। और प्रागभाव, भविष्यति (होगा) इत्यादि शब्दोंसे प्रागभाव का बोध होताहै; नञ् से ध्वंस अथवा प्रागभाव का बोधमानने में वही दोष लगेगा, कि जो घट पहिले भी रक्तथा; अबभी रक्त है, और फिरभी पाकसे अधिक रक्त होजावेगा; उस घटमें य-

ह प्रतीति होजावे; कि इस रक्त घटमें रक्तरूप नहींहै;
क्योंकि पहिले रक्तरूप का ध्वंस भी वहां रहगया, और आ
गे जो उत्पन्न होगा, उस रक्तरूपका प्रागभाव भी वहां रह
गया; और ध्वंस प्रागभाव सामान्याभाव तो होते ही नहीं,
कि जिससे कहदेवें; सारे रक्तरूपोंका ध्वंस अथवा सारे
रक्तरूपोंका प्रागभाव वहां नहीं रहा; परंतु यह नियम
दृढ़ समुझना, किआधारवाचक पदसे जहां सप्तमी वि
भक्ति आईहो, वहां नञ् का अर्थ अत्यंताभाव जानना;
और जहां आधारवाचक पदसे प्रथमा विभक्ति आई हो,
वहां नञ् का अर्थ अन्योन्याभाव (भेद) जानना; जैसा-
कि भूतले घटो नास्ति का भूतलमें घट नहीं है, इस प्रती
तिमें आधारवाचक भूतल पदसे सप्तमी विभक्ति आई-
है; जिसका भाषामें (में) अर्थ कियाहै; इसलिये यहां
नञ् का अर्थ अत्यंताभाव करना, भूतल में घट नहीं है,
अर्थात् भूतलमें घटका अत्यंताभावहै, और जहां ऐ-
सी प्रतीति हुई, कि अयंनघटः अर्थात् यह घट नहीं है,
इस प्रतीति में आधारवाचक इदम् शब्दसे प्रथमा विभ
क्ति आई है, इससे यहां नञ् का अर्थ अन्योन्याभाव (भेद)
ही करना; जैसा कि यह घट नहीं, क्या घट का भेद इसमें
रहताहै, अर्थात् यह घटसे भिन्नहै; परंतु जहां नञ् से
अत्यंताभाव का अथवा अन्योन्याभावका बोधहो, वहां
ही यह नियम मानना, और अत्यंताभाव शब्दसे जहां अ
त्यंताभाव का बोध हो, अथवा अन्योन्याभाव, भेद, अ
न्य, इतर, इत्यादि शब्दोंसे जहां अन्योन्याभावका बोधहो

वहां यह नियम नहीं मानना; क्योंकि पटे घटः भेदोस्ति अर्थात् पटमें घटका भेद है, इस प्रतीतिमें आधारवाचक पट शब्दसे यद्यपि सप्तमी विभक्ति आई है, तो भी अन्योन्याभावका बोध होही जाताहै। और वेदांती आदि कई शास्त्रकार अभाव नामी पृथक् पदार्थ नहीं मानते, किंतु जो अभाव जिस स्थानमें रहे, वह अभाव उस स्थानसे भिन्न नहीं मानना; किंतु वह अभाव उस स्थानका स्वरूपही मानना। और कई लोग ऐसाभी कहतेहैं, कि अभावका जो ज्ञान होताहै, उस ज्ञान से भिन्न अभाव कोई नहीं है; किंतु अभाव उस ज्ञानका स्वरूपही है, और कई लोग ऐसाभी कहतेहैं, कि जिस क्षणमें अभावका ज्ञान हो, वह अभाव उस क्षणसे भिन्न नहीं है; किंतु वह अभाव उस क्षणका स्वरूपही है। इन आशंकाओंका उत्तर इस भांति करतेहैं, कि सारे जगत्में जहां, एक प्रभाव है उस एकके स्थानमें तुमसारे जगतके इतने पदार्थ मानतेहो, कि जिनकी संख्याभी नहीं होसकती; और जो ज्ञान स्वरूप अभावको मानते हैं, उनके मतमें भी तत्तत्क्षणोंके भेदसे अनंत ज्ञानोंका स्वरूप माननेकी अपेक्षा अतिरिक्त अभावके माननेमेंही लाघवहै; इसीभांति क्षणस्वरूप अभावोंके माननेभी बड़ा गौरव है, क्योंकि क्षणभी इतनेहैं, कि जिनकी संख्याभी नहीं होसकती, तो इनकी अपेक्षाभी अतिरिक्त अभावके माननेमेंही लाघव है। परंतु यह गौरव देकर इन मतोंका खंडन पक्का नहीं होता, क्योंकि गौरव तब लगे, कि यदि कोई अतिरिक्त पदार्थ माना जावे, यह तो

अभावको उन्हीं पदार्थोंका स्वरूप मानाहै, जो पदार्थ वादी प्रतिवादी इन दोनों को सम्मत हैं, क्योंकि जिस लक्षणमें जहां अभाव रहताहै, वह स्थान लक्षण और ज्ञान इनके माननेविना तो निर्वाहही नहीं होता; वरुक इनसे अतिरिक्त अभावके माननेमें बड़ा गौरवहै, इनका स्वरूप माननेमें लाघवहै; इसलिये इनमतोंका इस भांति खंडन करना, यह नियम अनुभवसे सिद्ध होसकताहै, कि जिस पदार्थका जिस इंद्रिय से प्रत्यक्षहो, उस पदार्थका अभाव, उसपदार्थमें रहने वाली जाति, और विशेषधर्म, इन सारे पदार्थोंका भी उसी इंद्रियसे प्रत्यक्षहोगा। जो रूपका प्रत्यक्ष चक्षुसे होताहै, इसलिये रूपाभावका प्रत्यक्षभी चक्षुसेही होगा; परंतु वायुमें जो रूपाभाव रहताहै, वह वायुका स्वरूपही है, वायुसे पृथक् नहींहै, और वायुका प्रत्यक्ष चक्षुसे कभी नहीं होता, इसलिये वायुमें जो रूपाभावरहताहै, उसका प्रत्यक्षभी चक्षुसे नहीं होना चाहिये; और इसीभांति आकाशआदि अतींद्रिय पदार्थोंमें जो रूपाभाव रहताहै, वह उन आकाशआदिकोंसे भिन्न नहीं है; किंतु उन्हींका स्वरूपहै, परंतु आकाशआदि पदार्थोंका कभी किसी इंद्रियसे प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये रूपाभावका प्रत्यक्षभी कभी नहीं होना चाहिये; और जो अभावको ज्ञानस्वरूप मानतेहैं, उनके मतमें रूपाभाव ज्ञानपदार्थहुआ, परंतु ज्ञानका प्रत्यक्ष चक्षुसे कभी नहीं होता, इसलिये रूपाभावका प्रत्यक्षभी चक्षुसे नहीं होना चाहिये; और इसीभांति अभावको जो लक्षण स्वरूप मान

तेहै. इनके मतमें रूपाभाव काल पदार्थ हुआ; परंतु का-
लका प्रत्यक्ष कभी किसी इंद्रियसे नहीं होता, इसलिये रू-
पाभावका प्रत्यक्षभी नहीं होना चाहिये; इसीभांति रसका
प्रत्यक्ष रसनेंद्रियसे होताहै, इसलिये रसाभावका प्रत्यक्ष
भी रसनेंद्रियसेही होगा, और वायुमें जो रसाभाव रहै-
गा, वह वायु पदार्थही हुआ, परंतु रसनेंद्रियसे किसी
द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं होता, तो वायुका प्रत्यक्ष कहांसे
होगा; इसलिये वायुमें जो रसाभाव रहताहै, उसका प्रत्य
क्षभी रसनेंद्रियसे नहीं होना चाहिये; इसीरीति शब्दका
प्रत्यक्ष श्रोत्रसे होताहै, तो शब्दाभावका प्रत्यक्षभी श्रो
त्रसेही होगा; और घटमे जो शब्दाभाव रहताहै; वह घ
ट पदार्थही हुआ, परंतु श्रोत्रसे किसी द्रव्यका प्रत्यक्ष
नहीं होता, तो घटका प्रत्यक्ष श्रोत्रसे कभी नहीं होगा;
इसलिये जो घटमें रहताहै, उस शब्दाभावका प्रत्यक्षभी
श्रोत्रसे नहीं होना चाहिये। इसीभांति उन २ अभावोंके
प्रत्यक्षोंमें विरोध आतेहैं, और रसना श्रोत्र इत्यादि वहि
रिंद्रियोंसे ज्ञानका प्रत्यक्ष कभी नहीं होता, इसलिये अ
भावको ज्ञान पदार्थ समझें तो सर्वथा प्रत्यक्षोंमे विरो
ध पड़ेगा; और कालका प्रत्यक्षही नहीं होता, इसलिये
अभावको काल पदार्थ माननेसे भी अभावोंका प्रत्यक्ष
कभी नहीं होसकेगा; इन सब युक्तिओंसे सिद्ध हुआ,
कि अभाव पदार्थको अतिरिक्त माननेविना किसी री
तिसेभी निर्वाह नहीं होता; इससे अभाव नामी पंचम-
क पदार्थ अवश्य मानना। केवल किसी २ आचार्य्य-

का मतशेष रहगया, कि जो अभाव केवल अभावमें ही रहे, और जिसका प्रतियोगी केवल अभावही हो, ऐसा अभाव लाघव प्रमाण के द्वारा अधिकरण से भिन्न नहीं है; किंतु अधिकरण स्वरूपही है, जैसा कि घटध्वंसभेदाभाव क्योंकि इसका प्रतियोगी घटध्वंसभेदभी अभावही है, और यह अभाव केवल घटध्वंस मेंही रहताहै, और घटध्वंस अभावहै, अर्थात् इस अभावका अधिकरण भी केवल अभाव ही हुआ; इससे यह अभाव अधिकरणसे भिन्न नहीहै। और कई ग्रंथकार केवल इतनाही मानतेहैं, कि जिस अभावका प्रतियोगी केवल अभावहीहो, उसे अधिकरणसे भिन्न नहीं मानना; जैसे घटभेदाभाव क्योंकि इस अभावका प्रतियोगी केवल घटभेदहै, वह अभावहै, और अधिकरण इसका केवल घटहै, क्योंकि घटका भेद घटसे विना पटआदि सारे पदार्थोंमें रहताहै, तो उसका अभाव वहां नहीं रहेगा; किंतु घटमेंही उसका अभाव रहेगा। चाहे इस अभावका अधिकरण भावहीहै, पर प्रतियोगी इसका घटभेद केवल अभावही है, इससे यह अभाव अधिकरण से भिन्न नहीं मानना, इन्हींके मतसे चिंतामणि की टीका माथुरीमें लिखाहै, कि भेदका अत्यंताभाव भेदका प्रतियोगीही होताहै, क्योंकि घटभेदाभाव का अधिकरण भी घट और घटभेदका प्रतियोगीभी घटही है; परंतु सिद्धान्तमें लाघवसे भेदका अभाव भेदका प्रतियोगितावच्छेदक होताहै, क्योंकि घटभेदका अ-

भावभी घट में ही रहताहै, और घटभेदका प्रतियोगि तावच्छेदक घटत्वभी घटमेंही रहताहै; इस लाघव से घटत्व और घटभेदाभाव ये दोनों एकहीहैं, इसीरीति अ त्यंताभावका अत्यंताभावभी सिद्धांतमें लाघवसे प्रति योगीका स्वरूपही मानाहै; जैसा कि घटका अभाव केवल वहांही रहता है, जहां घट नहीं रहता, और घटा भावका अभाव वहांहीं रहताहै, जहां घट रहता है, इस लिये घट और घटाभावाभाव ये दोनों एकही हैं, केवल संज्ञाकाही भेद जानना चाहिये; सिद्धांतमें पदार्थ एकही है, और जिस अभावकी प्रतियोगिताका अवच्छेद क प्रतियोगितासे अधिकदेशमें भी नरहे, और प्रतियो गितासे न्यून देशमें भी नरहे, किंतु प्रतियोगिता और प्रति योगितावच्छेदक ये दोनों तुल्यदेशमें रहें; उस अभाव को सामान्याभाव कहतेहैं। जैसा कि घटोनास्ति इस प्र तीतिसे जिस अभावका बोध होताहै, क्योंकि इस अभाव की प्रतियोगिता सारे घटोंमेंही रहतीहै, और इसका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व भी सारे घटोंमेंही रहता है, अर्थात इस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक घट त्व प्रतियोगितासे अधिक देशमें भी न रहा, और न्यू न देशमें भी नहीं रहा, किंतु प्रतियोगिताके साथ तुल्य देशमें रहा, इससे यह सामान्याभावहै। और जिस अ भावकी प्रतियोगिता तत्तद्व्यक्तित्वके साथ समान देश में रहे, उसे विशेषाभाव कहतेहैं; जैसा कि इह नहु टो नास्ति अर्थात यहां वह घट नहीं है, इस प्रतीतिसे जि

स अभावका बोध होताहै, इसकी प्रतियोगिता केवल उसी घटमें रहेगी, जिसका अभाव जानाहै; और इसका प्रतियोगितावच्छेदक तद्घटत्व भी उसी घटमें रहेगा, अर्थात् इस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक तद्व्यक्तित्व, प्रतियोगिता ये दोनोंतुल्य देशमें रहे; इसलिये यह विशेषाभावहै। और जिस अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक द्वित्व हो, उसे उभयाभाव कहतेहैं; जैसाकि अत्रघटपटौनस्तः अर्थात् यहां घट और पट ये दोनों नहीं हैं, इस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक घट और पट इन दोनोंमें रहनेवाला द्वित्वहै, इसलिये यह उभयाभावहै। यह अभाव वहांही नहीं रहेगा; कि जहां घट और पट ये दोनों रहेंगे, और इन दोनोंमें एक जहां रहेगा, वहां इस अभावके रहनेमें कोई विवाद भी नहीं है; और जिस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक किसी स्थानमें भी प्रतियोगिताके अधिकरण मे नरहे, उसे व्यधिकरण धर्म्मावच्छिन्नाभाव कहतेहैं, जैसाकि घटत्वेनपटाभावहै, क्योंकि इस अभावका प्रतियोगी पट है; इसलिये प्रतियोगिता इसकी केवल पटमेंही रहेगी; और इस अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वहै, जो केवल घटोंमेंही रहताहै; अर्थात् घटत्वेन पटाभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व प्रतियोगिता के अधिकरण पटोंमें से किसी एक पटमें भी नहीं रहा, इसलिये यह व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभावहै; और व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नाभाव का किसी पदार्थके साथ विरोध नहीं है;

इसलिये यह अभाव सारे जगतमें रहताहै, क्योंकि घटत्वे न पटाभाव कहनेसे यह तात्पर्य्य है, कि जिस अभावके विरोधका नियम घटत्वसे बांधाजावे, ऐसा पटाभाव। परं तु पटाभावके विरोध का नियम पटत्वसे बंध सकताहै, अर्थात् जहां पट रहताहै, वहां पटाभाव नहीं रहता; परंतु घटत्वधर्म्मसे पट कहीं नहीं रहता, इसलिये घटत्वेनप टाभाव सारे जगतमें रहेगा, इस युक्ति से यह एक नियम सिद्ध हुआ, कि जिस धर्म्मसे जोवस्तु जहां रहे, उस धर्म्म से जिस अभाव के विरोधका नियम बांधा जावे, ऐसा उ स वस्तुका अभाव वहां नहीं रहेगा; जैसा कि जहां भूतल में घट रहताहै, वहां घटत्वधर्म्मसे रहता है, क्योंकि नैया यिकोंने यह युक्ति से सिद्ध किया है, कि जाति और अखं डोपाधिसे अतिरिक्त पदार्थोंका स्वरूपसे अर्थात् विनाकि सी विशेषण के ज्ञान नहीं होता, और घट द्रव्य है, तो जा ति और अखंडोपाधि इन दोनोंसे पृथक् हुआ; इस लिये जहां घटका ऐसा ज्ञान हुआ, अत्र घटोस्ति अर्थात् यहांघ टहै, इस प्रतीतिमें घटका ज्ञान घटत्व धर्म्मसे हुआ, और जहां उसी घटका ऐसा ज्ञान हुआ, कि यहां द्रव्य है, इस प्रतीति में घटका ज्ञान द्रव्यत्व धर्म्म से हुआ, और जहां घ टका ऐसा ज्ञान हुआ, कि यहां प्रमेय है, इस प्रतीतिमें घटका ज्ञान प्रमेयत्व धर्म्म से हुआ, इन्ही धर्म्मोंके भेदसे प्रतीतियोंके भेद हैं, चाहे इन सारियों प्रतीतियोंका विष य एक घटही है, तोभी घटत्व द्रव्यत्व और प्रमेयत्व आ दि धर्म्मही इन्हें परस्पर भेदकरवाते हैं, इसलिये जहां

घटत्व धर्मसे घटका ज्ञान हुआ, अर्थात् जहां ऐसी प्रतीति हुई, कि यहां घट है, वहां घटका ऐसा अभाव नहीं रहेगा, कि जिसके विरोधका नियम घटत्व से बांधा जावे, अर्थात् वहां घटो नास्ति यह प्रतीति नहीं होगी; और जिस धर्मसे जो वस्तु जहां नहीं रहे, उस वस्तुका वह अभाव वहां रहेगा; कि जिसके विरोधका नियम उस धर्म से बांधाजावे, जैसाकि घट शून्य देशमें घटाभाव रहताहै, क्योंकि जहां घट नहीं है, वहां घटका ज्ञान घटत्व धर्मसे नहीं होता, इसीसे वह घटाभाव वहां रहताहै, कि जिस के विरोधका नियम घटत्वसे बांधाजावे; और जो वस्तु जिस धर्मसे कहीं भी न रहे, उस वस्तुका वह अभाव सारे जगत् में रहेगा, कि जिसके विरोधका नियम उसी धर्म से बांधा हो; जैसा कि घट त्वेन पटाभाव सारे जगतमें रहता है, क्योंकि पट जहां रहताहै, वहां पटत्व धर्मसे अथवा द्रव्यत्वआदि धर्मोंसेही रहेगा, परंतु घटत्व धर्मसे पट कहीं नहीं रहता, इसीसे घटत्वेन पटाभाव अर्थात् पटका वह अभाव कि जिसके विरोधका नियम घटत्वसे बांधाजावे, वह सारे जगतमें रहेगा; क्योंकि इसका विरोधी कोई नहीं होसकता, घटत्वधर्मसे पट कहीं रहे, तो वह इसका विरोधी हो, परंतु घटत्व धर्म से पट कहीं भी नहीं रहता, इसलिये विरोधीके नहोनेसे स्वतंत्र होकर घटत्वेन पटाभाव सारे जगतमें रहता है। परंतु इस अवसरमें यह भी जानना आवश्यक है, कि यह व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव सोंदड नामी ग्रंथ-

कारनेही केवल माना है, "घटत्वेन पटो नास्ति" इस प्रतीति केवलसे और सिद्धांतमें यह अभाव नहीं माना है बीज इसके न माननेमें यह है, कि घटके निष्ठकारक ज्ञानसे घटाभावका ज्ञान नहीं होता, इसलिये अभावके ज्ञानका कारण प्रतियोगितावच्छेदक विशिष्टप्रतियोगीका ज्ञान माना है, अर्थात् प्रतियोगितावच्छेदक धर्मसे जो प्रतियोगीका यथार्थज्ञान वह अभावके ज्ञानका कारण है; और घटत्वधर्मसे पटका यथार्थज्ञान कभी नहीं होता, इसलिये घटत्वेन पटाभाव कभी नहीं हो सकता; और जिस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक प्रतियोगीमें भी रहे, और प्रतियोगीसे भिन्न पदार्थोंमें भी रहे, उसे सामान्यरूपेण विशेषाभाव कहते हैं; जैसा कि द्रव्यत्वेन घटाभाव क्योंकि इस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्व और प्रतियोगी घट है, और द्रव्यत्व घटमें भी रहता है, घटसे भिन्न पटआदिकोंमें भी रहता है; इसलिये यह सामान्यरूपेण विशेषाभाव है। जहां घट रहता है, वहां यह अभाव नहीं रहता; और सारे स्थानोंमें रहता है। परंतु सिद्धांतमें यह भी अभाव नहीं माना है, और जिस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक किसी प्रतियोगीमें रहे; किसीमें न रहे, उसे विशेषरूपेण सामान्याभाव कहते हैं; जैसा कि घटत्वेन द्रव्याभाव, क्योंकि इस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है, और प्रतियोगी इसके सारे द्रव्य हैं, और घटत्व घट नामी द्रव्यमें रहता है, और पट आदि द्रव्योंमें नहीं रहता, इससे यह विशे-

षरूपेण सामान्याभाव है; यह अभाव भी वहांही रहता है, जहां घट नहीं रहता, और सिद्धांत में यह अभाव भी नहीं मानते हैं, और जिस अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक वैशिष्ट्य है, अर्थात् जिस अभावके विरोधका नियम वैशिष्ट्यधर्मसे बांधा जावे, उसे विशिष्टाभाव कहते हैं; अर्थात् विशिष्टका अभाव जैसा कि उत्तेजकाभाव विशिष्टमण्यभाव, अर्थात् उत्तेजकाभाव विशिष्ट जो मणि उस विशिष्टका अभाव, क्योंकि इस अभावका प्रतियोगितावच्छेदक वह है, जो मणिमें उत्तेजकाभावका वैशिष्ट्य है; इससे यह विशिष्टाभाव है, और यह अभाव तीन स्थानों में रहताहै, एकतो वहां कि जहां विशेष्य होभी, परंतु विशेषण न हो, और दूसरे जहां विशेषण हो भी, पर विशेष्य नहो, और तीसरे जहां विशेषण और विशेष्य इन दोनोंमें से एकभी नहो, पूर्वोक्त अभावका प्रतियोगी उत्तेजकाभाव विशिष्टमणि है, इसमें उत्तेजकाभाव विशेषण और मणि विशेष्य जानना चाहिये, इसलिये जहां वह्नि दाह का प्रतिबंधक (रोकनेवाला) चंद्रकांतमणि, और वह्निका सहायक सूर्यकांतमणि, जिसे उत्तेजक भी कहते हैं, ये तीनों हों, वहां विशेष्य चंद्रकांतमणि है, भी पर विशेषण उत्तेजकाभाव के न रहनेसे वहां उक्त विशिष्टाभाव अर्थात् उत्तेजकाभाव विशिष्टमण्यभाव रहताहै; और जहां केवल वह्नि पड़ाहै, वहां विशेषण उत्तेजकाभाव है, भी परंतु चंद्रकांतमणिनामी विशेष्यके न होने से उक्त विशिष्टाभाव रहताहै; और

जहां वह्नि और सूर्यकांत मणि, ये दोनों पड़े हों, वहां उत्तेज-
काभाव नामी विशेषणभी नहीं रहता, और चन्द्रकांत
मणि नामका विशेष्य भी नहीं रहता, इससे वहां उक्त
विशिष्टाभाव अर्थात् उत्तेजकाभाव विशिष्टमण्यभाव
वहां रहता है। और वह्नि चंद्रकांत नामी प्रतिबंधक म-
णि, ये दोनों जहां रहें, वहां उत्तेजकाभाव नामी विशेष-
ण और चंद्रकांतमणि नामी विशेष्य ये दोनों रहते हैं, इ-
ससे वहां विशिष्टाभाव नहीं रहता, और जिस संबंधसे
जो धर्म्म कहीं भी नहीं रहे, उस संबंधसे वह धर्म्म जिस
अभावके विरोध का नियम बांधे, वह अभाव सारे जग-
तमें रहता है; इस अभावको शास्त्रमें व्यधिकरण संबं-
धावच्छिन्नावच्छेदकताक अभाव कहते हैं; जैसाकि
संयोगेन द्रव्यत्वेन घटो नास्ति अर्थात् संयोगसंबंध से
द्रव्यत्व वाले घटका अभाव, परंतु संयोग संबंध से द्रव्य-
त्व कहीं नहीं रहता, इससे विरोधी इस अभावका कोई
नहीं हुआ, जो इसे किसी स्थानसे हटावे, स्वतन्त्र होके
यह अभाव सारे जगतमें रहता है। और कई लोग ऐसी
आशंका करते हैं, कि अभावके ज्ञानमें प्रतियोगी का
ज्ञान जब कारण माना है, तो भाव पदार्थके जानने वि-
ना अभाव पदार्थका निरूपण करना सर्वथा अयुक्त
है, इसका उत्तर यह है, सात पदार्थोंमें से सातवां पदा-
र्थ जब अभाव माना है, तो यह बात अर्थसे सिद्ध हो-
गई, कि द्रव्य, गुण, कर्म्म सामान्य विशेष और समवा-
य ये छे भाव हैं, जैसा कि जहां दश मनुष्य बैठे हों,

और ऐसा कहा जावे, कि इन दसोंमें एक यह साधु है, तो वहां यह बात अर्थसेही प्रतीत होजाती है, कि इन में शेष नौ मनुष्य गृहस्थीहैं, साधु नहीं हैं ॥

इति ॥ शुभमस्तु ॥ ❖ ❖ ❖